दंसण मूलो धम्मो

# आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९३ | तंत्री जगजीवन बाउचंद दोशी | वर्ष २३ अंक नं० १

जन्म जयन्ती अंक

## सम्यक्त्व-भावना

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

* शुद्धस्वरूप के निर्विकल्प अनुभवपूर्वक की सम्यक्प्रतीतिरूप सम्यग्दर्शन की अचिंत्य महिमा जिनवाणी में अत्यंत प्रसिद्ध है। आठों कर्मों का क्षय करने की शक्ति उस सम्यक्त्वपरिणमन में है—ऐसा श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा है।
* वह सम्यग्दर्शन आत्मा के सर्व निजधर्मों का मूल है, वह मोक्ष का मूल है; जिनधर्मरूपी कल्पतरु का मूल सम्यक्त्व है।
* धर्मनगर में प्रवेश करने का द्वार सम्यक्त्व है।
* व्रत, तप और स्वरूप की प्रतिष्ठा (शोभा) सम्यक्त्व से है।
* अनंत सुख देनेवाला निधान सम्यक्त्व है।
* आत्मा के गुण का आधार सम्यक्त्व है।
* सकल गुणों का धाम सम्यक्त्व है।

—सम्यक्त्व की ऐसी महिमा जानकर उसकी भावना द्वारा स्वरूप-रस प्रगट होता है। हे जीव! ऐसे परमकल्याणकारी सम्यक्त्व की तू अत्यंत प्रेमपूर्वक भावना कर!

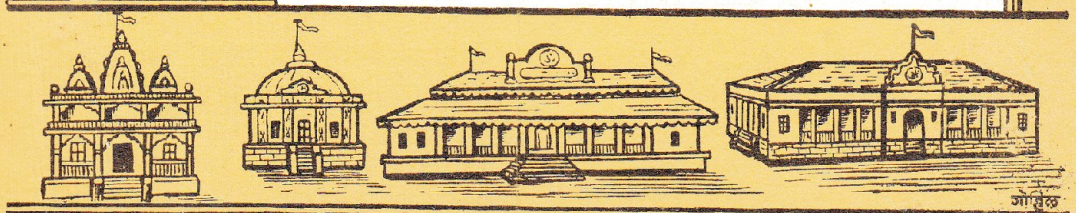

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

मई १९६७] | वार्षिक मूल्य ३) | ( २६५ ) | एक अंक २५ पैसा | [ बैशाख सं० २०२४

# विषय-सूची


अब तो जाग्रत हो जाओ...

वर्द्धमान के जन्म की मंगल बधाई

प्रवचन वाटिका के पुष्प

ज्ञान का विश्वास

स्वाध्याय में रत श्री स्वामीजी (चित्र)

आनंद किरण का स्वस्तिक और दीपक

उसका तू ज्ञान कर कि जिससे समाधिमरण का अवसर प्राप्त हो

जिसे स्वभाव का रंग लगा

स्वामीजी के ७८ वें जन्म महोत्सव के प्रसंग पर समर्पित ७८ पुष्प

तत्त्वचर्चा

जिनवचन का सार

अचिंत्य महिमावंत आत्मशक्ति

साधक किसप्रकार आत्मा को साधता है

आत्मार्थी को आत्मा की अप्राप्ति शोभा नहीं देती

सम्यग्दृष्टि की अंदर की दशा का वर्णन

कल्याण की मूर्ति सम्यग्दर्शन

अनुभव में प्रगट होनेवाली ज्ञान ज्योति

जीवन का कर्तव्य

जन्म जयन्ती संबंध में लेख व फोटो

विविध वचनामृत

समाचार संग्रह



# आत्मधर्म

**आजीवन सभ्य योजना**

आत्मधर्म मासिक पत्र के हजारों की संख्या में ग्राहक हैं। पत्र ज्यादा से ज्यादा विकसित बने और उनके स्थायी ग्राहकों को हरसाल वार्षिक शुल्क भेजने का कष्ट न हो, संस्था को भी व्यवस्था में सुविधा रहे। अत: ऐसा निर्णय किया गया है कि- १०१) रुपये लेकर 'आजीवन सभ्य' योजना चालू की जाये, एवं उन्हें 'आत्मधर्म' हरसाल बिना वार्षिक शुल्क भेजा जाये। अत: जो सज्जन इस योजना से लाभ उठाना चाहें, वे निम्न पते पर १०१) रुपया भेजकर इस योजना में सहयोग प्रदान करें। यह योजना गुजराती तथा हिन्दी दोनों भाषाओं के 'आत्मधर्म' के लिये चालू की गई है।

पत्र व्यवहार का पता—

मैनेजर दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

# आत्मधर्म

: संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला)

मई : १९६७ ☆ वर्ष २२वाँ, बैशाख, वीर नि०सं० २४९३ ☆ अंक : १

## अब तो जाग्रत हो जाओ....

जगवासी जीवन सों गुरु उपदेश कहे,
तुम्हें यहाँ सोवत अनंत काल बीते हैं।
जागो ह्वै सचेत समता समेत सुनो,
केवल-वचन जातैं अक्ष-रस जीते हैं॥
आवो मेरे निकट बताऊं मैं तुम्हारो गुन,
परम सुरस-भरे करम सौं रीते हैं।
ऐसे बैन कहे गुरु तो उसे न धरे उर,
मित्त कैसे पुत किधौं चित्र के से चीते हैं॥१२॥

*(समयसार नाटक)*

श्री गुरु जगवासी जीवों को उपदेश देते हैं कि तुमको इस संसार में मोह निद्रा लेते-लेते अनंत काल चला गया; अब तो जाग्रत हो जाओ... और सावधान तथा शांत चित्त होकर भगवान की वाणी सुनो... कि जिससे इन्द्रिय के विषयों को जीता जा सकता है।

(श्री गुरु बारंबार प्रेम से कहते हैं:) आवो, मेरे पास आवो; मैं तुमको कर्म कलंक से रहित परम आनंदमय तुम्हारे आत्मा के गुण बतलाता हूँ। श्रीगुरु इसप्रकार वचन कहते हैं तो भी संसारी मोही जीव ध्यान देता नहीं—वह कैसा है?—जैसे मिट्टी का पुतला हो, अथवा चित्रित किया हुआ मनुष्य हो! चेतनता सहित हो तो इसप्रकार के गुरु वचन सुनकर क्यों नहीं जाग्रत हो?-अर्थात् जरूरत जाग्रत हो जावे।

# वर्द्धमान के जन्म की मंगल बधाई

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी.....

मंगल बधाई !

तीर्थंकरदेव के जन्म की वह बधाई क्षणमात्र में सारे विश्व में फैल गई और तीन लोक के जीव क्षणभर के लिये सुखी हो गये... जिसके जन्म के प्रभाव से जगत् में प्रकाश हुआ, उस आत्मा की दिव्य महिमा का चिंतन करते हुए अनेक जीवों के अंतर में ज्ञान का प्रकाश प्रगट हुआ... धर्म की धारा वृद्धिंगत हुई; इसलिये उनका नाम 'वर्द्धमान' हुआ।

बिहार की वैशाली और कुण्डग्राम धन्य हुए... माता प्रियकारिणी और सिद्धार्थ राजा ने माता-पिता का बिरद प्राप्त किया... उनको मोक्षगामी होने की मुहर लग गई।

प्रभु वर्द्धमान आराधक तो थे ही, सिंह के भव से लेकर दस-दस भव में पुष्ट की हुई आत्म साधना इस भव में पूर्ण करना थी। दर्शन आराधना और ज्ञान आराधना तो जन्म से ही साथ लाये थे; उसकी वृद्धि करते-करते तीस वर्ष की उम्र में तो संसार से विरक्त होकर प्रभु ने चारित्रपद धारण किया और 'परमेष्ठी' हुए... माता-पिता के होते हुए भी उनके मोह में वे नहीं पड़े... आत्मसाधक वीर मोह के बंधन में कैसे बँधते ? मोह के बंधन तोड़कर वे निर्मोही हो गये... उनकी आत्मसाधना उग्र बनी... अनेक परिषह आये, अनेक उपद्रव हुए, देवों ने भी डिगाने का प्रयत्न किया, परंतु वे तो महावीर थे... स्वरूप साधना से च्युत नहीं हुए सो नहीं हुए... साधकभाव की धारा को वृद्धिंगत करते-करते अंत में केवलज्ञान प्राप्त किया और फिर एक बार केवलज्ञान के प्रकाश से विश्व के प्राणी चमत्कृत हो उठे... सर्वत्र जिनमहिमा फैल गई। राजगृही में विपुलाचल पर दिव्यध्वनि की धारा प्रवाहित हुई और उस वीरवाणी को झेलकर अनेक जीव आत्मिक वीरता प्रगट करके वीरमार्ग पर चल पड़े... कोई गणधर बने तो किन्हीं ने मुनिपद ग्रहण किया, कोई अर्जिका बनीं, कोई श्रावक-श्राविका हुए... अनेक जीवों ने सम्यक्त्व प्राप्त किया।—इसप्रकार स्व-पर में धर्मवृद्धि करके वर्द्धमान ने अपना नाम सार्थक किया... जीवन सार्थक किया।

उन महावीर का आदर्श लेकर मुमुक्षु जीव आज भी वीरतापूर्वक उन वीरनाथ के वीतरागी मार्ग में विचर रहे हैं। हम भी उसी वीर मार्ग पर चलें.... —ब्र०ह०जैन

# प्रवचन-वाटिका के पुष्प

## मोक्ष का प्रवेश द्वार अनुभव

* अनुभव अर्थात् क्या ?
* अनुभव अर्थात् चैतन्य सुख का प्रत्यक्ष आस्वाद; आत्मा के अतीन्द्रिय आनंद के प्रत्यक्ष आस्वाद का नाम आत्मा का अनुभव है।
* मोक्षमार्ग के भाव का समावेश तो होता है और रागादि भाव स्वानुभूति से बाहर रह जाते हैं। इसप्रकार मोक्षमार्ग का भाव और रागभाव-(स्वाश्रितभाव और पराश्रित व्यवहारभाव) यह दोनों भाव भिन्न-भिन्न ही हैं-ऐसी पृथक्ता का अनुभव किये बिना मोक्षमार्ग की साधना नहीं हो सकती।
* मोक्षमार्ग में काहे की आवश्यकता है ? विपरीत अभिप्रायरहित स्वानुभूति की। स्वानुभूति के बिना मोक्षमार्ग नहीं साधा जा सकता।
* मोक्षमार्ग को बीच में दूसरे भाव आयें किन्तु उनके आधीन मोक्षमार्ग नहीं है। मोक्षमार्ग तो स्वानुभूति के ही आधीन है।
* स्वानुभूति के द्वारा आत्मा स्वयं अपने स्वरूप में प्रवेश करके शुद्ध होता है, अर्थात् अनुभूति वह मोक्ष का प्रवेश द्वार है।

## जिनशासन में

शुद्ध चैतन्य वस्तु का अनुभव, वह जैनशासन में उपादेय है। अनुभव में आनेवाला आत्मा अतीन्द्रिय स्वभावी है, वह कभी इन्द्रियों से ग्रहण नहीं किया जाता। शुद्धनयरूप ज्ञान द्वारा ऐसे आत्मा की अनुभूति, वह समस्त जैनशासन है। उस अनुभूति में जैनशासन है, अनुभूति से अलग कोई जैनशासन नहीं है, अर्थात् शुभाशुभ रागादि भाव, वह जैनशासन नहीं है; वह मोक्षमार्ग नहीं है। वे पर भाव जैनशासन से बाहर, अर्थात् मोक्षमार्ग से बाहर है; जो वस्तु शुद्धात्मा की अनुभूति से बाहर है, वह सब जैनशासन से बाहर है; जिसे शुद्ध आत्मा की अनुभूति नहीं है, उसे जैनशासन की खबर नहीं है, वह वास्तव में जैनशासन में आया ही नहीं।

जिसने आत्मा की अनुभूति की, उसने समस्त जिनशासन के रहस्य को जान लिया, और वह मोक्षमार्ग में आया।

## स्वानुभूति में सब समा जाता है

अहो! स्वानुभूति, वह जैनधर्म का मर्म है। सम्यग्दर्शन से लेकर सिद्धपद तक की शुद्धता स्वानुभूति के द्वारा प्रगट होती है। मोक्षमार्ग का समावेश स्वानुभूति में होता है। संत और शास्त्र स्वानुभव करने का आदेश देते हैं। जो शास्त्र की ओर ही देखता रहे और आत्मोन्मुख होकर स्वानुभूति प्रगट न करे, उसने शास्त्र की आज्ञा मान्य नहीं की। जिसने स्वानुभव प्राप्त किया, उसने सर्व शास्त्रों का रहस्य जान लिया। इसप्रकार स्वानुभूति में सर्व शास्त्रों का रहस्य है।

## स्वानुभूति हुई, तब सबको जाना

जिसे स्वानुभव नहीं है, वह परमात्मा के सुख को नहीं जानता। भगवान को जैसा अतीन्द्रिय सुख है, वैसे सुख के अंश का स्वानुभव किये बिना अर्थात् अतीन्द्रिय ज्ञान से अपने आत्मा का अनुभव किये बिना भगवान को कैसा सुख है, उसकी पहिचान नहीं होती। अकेले दुःख के स्वाद में (और इन्द्रिय ज्ञान में) लीन रहकर परमात्मा के अतीन्द्रिय सुख को नहीं जान सकता।

जहाँ स्वानुभव हुआ और स्वभाव के सुख का स्वाद लिया, वहाँ भान हुआ कि अहो, आत्मा का ऐसा सुख!! परमात्मा को ऐसा पूर्ण सुख है; मुनिवर ऐसे स्वभाव सुख के अनुभव में लीन हैं, सम्यक्त्वी जीव ऐसे सुख का अनुभव करते हैं–इसप्रकार स्वानुभव होने पर सबकी सच्ची पहिचान हुई और स्वयं भी उनकी जाति में सम्मिलित हो गया।

## परिणाम की शांति

परिणाम की शांति बिना ज्ञान का परिणमन नहीं होता।

## युद्ध और वैराग्य

धन्य है उन बाहुबलिस्वामी को, कि उन्होंने युद्ध भूमि को वैराग्य भूमि बना दिया... और मोह विजेता बनकर केवलज्ञान चक्र साधकर चैतन्य चक्रवर्ती हुए। उन्हें नमस्कार है...।

## शांत परिणाम हों तब...

जब अपने परिणाम शांत होते हैं, तब अनुभव होता है कि भीतर कितनी महिमा भरी हुई है! एक बार स्व का स्वाद आ जाये तो परिणति कहीं नहीं भटक सकती। ●

# ज्ञान का विश्वास

[ आकुलता-उलझन दूर किसप्रकार हो ?—ज्ञान का विश्वास ]

एक भाई प्रतिकूलता से व्याकुल होकर कहने लगे कि साहब यह प्रतिकूलता आ गई। इससे आकुलता पैदा होती है, इस आकुलता से छूटने के लिये क्या करना ?

उत्तर—भाई, ज्ञान का विश्वास रखो, ज्ञान तो जानता है कि ज्ञान दुःखी होता है ?

आत्मा ज्ञानस्वरूप है, इसका विश्वास करना कि—मैं तो नित्य निरंतर ज्ञान हूँ; ज्ञान में प्रतिकूलता कैसी ? और ज्ञान में दुःख कैसा ? ज्ञान में तो जानने का काम हो। ऐसे ज्ञान का विश्वास रखनेवाले को कोई प्रतिकूल नहीं है; प्रतिकूलता में व्याकुलता होती ही नहीं, क्योंकि प्रतिकूलता का प्रवेश ज्ञान में होता ही नहीं है, वह तो ज्ञान के बाहर ही रहती है। ज्ञान में भव दुःख को भी मिटाने की शक्ति है तो दूसरे रोग की तो गिनती ही क्या ?

रोग आया, तो क्या यह ज्ञान में प्रवेश कर गया ?—नहीं, वह तो बाहर ही रहकर ज्ञान में जानने में आता है; इसलिये प्रतिकूलता ज्ञान में नहीं है। इसप्रकार ज्ञान का विश्वास रखना; इससे ज्ञान स्वयं समाधानरूप-सुखरूप है।

**ज्ञान में प्रतिकूलता और दुःख है ही नहीं।**
**ज्ञान में समाधान और शांति है॥**

इसप्रकार ज्ञान की भावना से ही प्रतिकूलता दूर करने का मार्ग है।

'जब संसार में हजारों प्रकार की प्रतिकूलता एक साथ आ जाये, कहीं भी किसी भी प्रकार मार्ग न मिले, ऐसे अवसर पर कौनसा मार्ग है ?

एक ही मार्ग..... 'ज्ञानभावना'

'ज्ञानभावना' क्षणमात्र में सभी प्रतिकूलता को झटककर हितमार्ग दिखाती है, और अलौकिक प्रकार का धैर्य तथा अचिंत्य शक्ति प्रदान करती है।

**ज्ञानभावना यह सर्व दुःखों की परम औषधि है।**

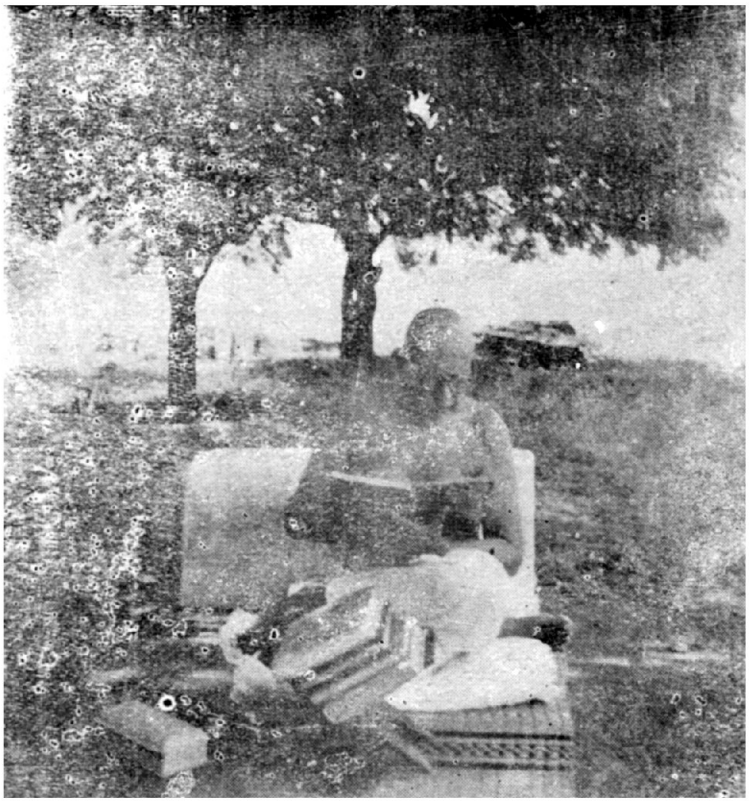

**वैशाख सुदी २ वीर सं० २४९३ : ७८ वाँ मंगल महोत्सव**

हे परमोपकारी गुरुदेव! आज के मंगल दिन के मंगल प्रभात समय लाख-लाख अभिनंदन सहित भारत के भक्त आपको वंदन करते हैं। हम मुमुक्षुओं के जीवन में आपका परम उपकार है। जैन जगत में आप तेजस्वी भानु हैं.... ज्ञान किरणों के प्रकाश द्वारा सर्वज्ञ वीतरागकथित मोक्ष-मार्ग को प्रकाशित कर रहे हैं.... जिस मार्ग को जानने से और आराधन करने से आत्मा भवबंधन से अवश्य छूटे और मोक्षसुख को प्राप्त करे—ऐसे मार्गप्रकाशक आप जयवन्त वर्तो।

# आनंद-किरण का स्वस्तिक और दीपक

सत्य स्वरूप का ज्ञान देनेवाले अपूर्व महिमा को धारण करनेवाले आपके चरण-कमल की सेवा भक्ति निरंतर हृदय में निवास करो। आपने इस भरतक्षेत्र में अवतार धारण कर अनेक जीवों का उद्धार कर सम्यक् मार्ग पर लगाया है।

आपका अद्‌भुत श्रुतज्ञान चैतन्य का चमत्कार बतलाता है—चैतन्य का वैभव बतलाता है, चैतन्यमय जीवन बनाता है। आपके आत्म-द्रव्य में श्रुत सागर की हिलोरें उछल रही हैं, आत्म-पर्यायों में जगमगाते ज्ञान-दीपक प्रकाशित हो रहे हैं—जो आत्मद्रव्य को प्रकाशमान कर रहा है। आपका आत्म-द्रव्य आश्चर्य उत्पन्न कराता है।

हे पवित्र महिमावंत! आपके मुखकमल से निकलती हुई वाणी की क्या बात! यह ऐसी अद्‌भुत-रसयुक्त है कि इस दिव्य अमृत का पान करते हुए तृप्ति होती ही नहीं। आपकी सूक्ष्मवाणी, चमत्कार से भरपूर; भव का अंत लानेवाली है; चैतन्य को चैतन्य के ज्ञान-महिमा में उतारनेवाली है। आपके कार्य अजोड़ हैं।

पंच परमेष्ठी भगवंतों की सत्य पहिचान करानेवाले आप जिनेन्द्रदेव के परमभक्त हैं, पंच परमेष्ठी के परम भक्त हैं। श्रुतदेवी माता आपके हृदय में अंकित हो गई है। जिनेन्द्र भगवंतों और मुनिवर भगवंतों के दर्शन और स्मरण से आपका हृदय उछल जाता है।

आपने सम्यक् रत्नत्रय का मार्ग स्वयं आराध करके दूसरों को यह मार्ग चारों तरफ से स्पष्ट करके बताया है। आप निडर-निर्भय पराक्रमी हैं। वीरमार्ग को आपने स्वयं निशंकता से प्रकाशित किया है।

# उसका तू ज्ञान कर... कि जिससे समाधिमरण का अवसर प्राप्त हो

**[ चैत्र बदी ( गुजराती ) पंचमी के प्रवचन में से : राजकोट ]**

देखो, श्रीमद् राजचंद्रजी की समाधि का आज दिवस है। उन्होंने १८-१९ वर्ष की आयु में ये वचन कहे थे कि अरे जीव! उसका तू बोध प्राप्त कर कि जिससे समाधिमरण का अवसर प्राप्त हो। अज्ञान में असमाधिभाव से अनंत बार मरण प्राप्त किये, अनंत देह का संयोग छोड़ा, परंतु चैतन्य की .....तपूर्वक अगर एक भी बार समाधिभाव से देह छोड़ा होता, तो दूसरी बार देह रहता ही नहीं।

**लघुवय से अद्भुत हुआ तत्त्वज्ञान का बोध,**
**वह ऐसा सूचन करे कि गति-आगति कहाँ शोध ?**

बालकपन से ही तत्त्वज्ञान के प्रचुर संस्कार थे। पूर्व भव में कहीं न कहीं आत्मा ने उत्तम सत्संग प्राप्त किया था और भविष्य में भी आत्मा के आनंद के वेदन सहित ही जहाँ कहीं भी जाऊँ, चैतन्य का ज्ञान अब भूलने में नहीं आयेगा, 'पर' के लक्ष्य से तो जीव देह छोड़ता ही है, परंतु स्व के ज्ञान सहित ज्ञानी समाधिमरण से देह छोड़ता है, वह अपूर्व है। एक बार ऐसे भाव से देह छोड़े तो फिर से जन्म-मरण रहे नहीं। ( एक दो भव हो तो गिनती नहीं।)

श्रीमद् राजचंद्रजी का देह इस चैत्र बदी पांचम ( ६४ वर्ष पहले ) राजकोट में समाधि मरण द्वारा छूटा था। वह कहते हैं कि अरे जीव! एक बार निज स्वरूप का बोध ( ज्ञान ) कर...

**जगत को मरने का भय है...**
**ज्ञानी को तो आनंद की लहेर जो...**

भव जिसमें नहीं, विकार जिसमें नहीं, ऐसे भगवान आत्मा के भानपूर्वक समाधिभाव द्वारा एक बार देह छूटा, उसको अनंत काल के असमाधि मरण का अंत आ गया है। अपने आत्मा के अनुभव सहित भव अंत की झंकार आ गई है। इससे कहते हैं कि:—

**एह परम पद प्राप्ति नुं कर्युं ध्यान में,**
**गजा वगरने हाल मनोरथ रूप जो।**

**तो पण निश्चय राजचंद्र मनने रह्यो,**
**प्रभु आज्ञाए थाशुं तेज स्वरूप जो! ....अपूर्व०**

[नुं=काय, कर्युं=किया, गजा वगरने=शक्तिरहित, और हाल=अभी, पण=भी, थाशुं=होंगे ही ?]

देखो, आत्मा का भान तो हुआ है, परंतु अभी परमात्मदशा इस देह से प्राप्त नहीं हुई, फिर भी स्वानुभव के बल से अल्पकाल में परमात्म पद की प्राप्ति की प्रतिज्ञा करके जाते हैं, यह देह छूटा, अब फिर से ऐसा देह नहीं मिलेगा।

आत्मा की जाति का परिवर्तन हो जायेगा, और फिर से इसप्रकार का देह भी नहीं मिलेगा। अगर कभी एक या दो भव हों तो शरीर मिलेगा ही; फिर भी वह आराधक भाव सहित पृथक् जाति का ही होगा, आत्मा की दशा जहाँ अपूर्व हो गई, वहाँ देह की दशा भी अपूर्व हो जाती है, कारण कि—आराधकभावसहित पुण्य का निमित्त पहले कभी नहीं था; चैतन्य के भानपूर्वक उसकी आराधना में रमण करते-करते जिसने देह छोड़ा, उसके अनंत काल के असमाधिमरण दूर हो जाते हैं, और वह अल्प काल में ही मुक्ति प्राप्त करेगा।

## भक्ति

जिसको ज्ञानी के प्रति सच्ची भक्ति नहीं, उसको ज्ञानस्वरूप अपने आत्मा की सच्ची भक्ति नहीं है, अपने ज्ञानस्वरूप आत्मा को जो साधना चाहता है उसको, इस ज्ञानस्वरूप के साधक दूसरे धर्मात्माओं के प्रति अत्यंत प्रमोद और बहुमान का भाव अवश्य प्रगट हुए बिना रहता नहीं।

# स्वामीजी के ७८ वें जन्म महोत्सव के प्रसंग पर समर्पित ७८ पुष्प

[संपादक : ब्र० हरिलाल जैन]

१. जिन्होंने आत्मा का स्वरूप समझाकर भव-भ्रमण के दु:ख से बचाया, इन सत्पुरुष को नमस्कार हो।

२. आत्मस्वरूप अंतर की वस्तु है, इसको पहिचानकर अनुभव किये बिना जगत के सभी जीव दु:खी हैं।

३. सुख आत्मा का स्वानुभव है, स्वानुभव ही दु:ख दूर करके सुख प्रगट करने का रास्ता है।

४. धर्मी को शुभ-अशुभ के उदय के समय भी सम्यक्त्व की धारा अखंडता से ऐसी की ऐसी ही चलती है।

५. स्वानुभव में जो आनंद का स्वाद आया, इसमें बारंबार उपयोग लगाने की भावना धर्मी को होती है।

६. स्वानुभव में उपयोग के समय निर्विकल्पदशा में अतीन्द्रिय आनंद का विशिष्ट प्रकार का वेदन है, ऐसा सविकल्प दशा में नहीं होता है।

७. धर्मी जीव को रागरूप परिणाम होते हुए भी इनका सम्यक्त्व रागमय नहीं बनता, यह तो राग से पृथक् ही रहते हैं।

८. अहा! धन्य है साधर्मियों को जो प्रेम से स्वानुभव की चर्चा करते हैं।

९. प्रसन्नचित्त होकर आत्मा की प्रीतिपूर्वक उसके अनुभव की बात उत्साह से सुनते हैं, ऐसे जीव भी महा भाग्यशाली हैं।

१०. मोक्षमार्ग का प्रथम रत्न सम्यग्दर्शन है। इस ही के द्वारा मोक्षमार्ग का उद्घाटन होता है।

११. स्व-पर के यथार्थ भेदज्ञानसहित तत्त्वार्थश्रद्धान करके स्वानुभवसहित शुद्धात्मा का श्रद्धान करना, वह सम्यग्दर्शन है।

१२. जिसप्रकार सूर्य के प्रकाश में अंधकार रह नहीं सकता; उसीप्रकार चैतन्य सूर्य के स्वानुभव के प्रकाश में अज्ञानरूपी अंधकार रह ही नहीं सकता।

१३. अपूर्व अंतर प्रयत्न से जिसने निज स्वरूप को साध लिया है, ऐसे सम्यग्दृष्टि की अंतर दशा की पहिचान होना जगत के लिये दुर्लभ है।

१४. आत्मा से संबंधित ज्ञान में जहाँ भूल नहीं, वहाँ बाह्य पदार्थ जानने की भूल मोक्षमार्ग की साधना करने में रूकावट नहीं लाती।

१५. शुद्धात्मारूपी प्रयोजन के बिना सभी जानना व्यर्थ है, कारण कि इसके बिना मोक्षमार्ग साधा नहीं जाता।

१६. सम्यग्ज्ञान उसको कहते हैं कि जो निज स्वरूप की साधना करे; निज स्वरूप की जो साधना नहीं करे, वह अज्ञान है।

१७. सम्यग्ज्ञान की अचिंत्य महिमा है, इस ज्ञान के रसिक जीव हर समय अल्प ही होते हैं।

१८. निर्विकल्प अनुभव चलता हो, तभी सम्यग्दृष्टि कहने में आवे और सविकल्प समय कहने में न आवे, ऐसा नियम नहीं है।

१९. इसप्रकार नियम है कि सम्यक्त्व की उत्पत्ति के समय तो निर्विकल्प अनुभव होता ही है।

२०. सम्यग्दर्शन, यह उपयोग नहीं है; सम्यग्दर्शन तो आत्मप्रतीति है।

२१. बाह्य उपयोग के समय भी धर्मी जीव को शुद्धात्मा का श्रद्धान ऐसा का ऐसा ही चालू रहता है।

२२. सम्यक्त्वी महात्मा की ऐसी अलौकिक स्थिति है कि राग के समय भी राग से पार शुद्धात्मा की प्रीति चालू रहती है।

२३. शुभभाव के समय सम्यक्त्व होता है परंतु शुभभाव से सम्यक्त्व प्राप्त होता ही नहीं है।

२४. शुभ के समय शुभ से रहित ऐसे शुद्धात्मा की प्रतीति चालू रहती हो, वही सम्यग्दृष्टि है।

२५. धर्मात्मा के अंतर की गुण दशा को जो पहिचाने, उसको स्वयं के स्वभाव और परभाव के भेद विचार की स्फूरणें प्रगट होती हैं।

२६. स्वयं के देव-गुरु-धर्म की भक्ति-प्रभावना के प्रसंग के समय धर्मी उल्लास से परिपूर्ण हो जाता है, लोभ करता नहीं और अरुचि या संकोच नहीं करता।

२७. धर्मी के उपयोग का अनुसंधान निजस्वरूप के ऊपर है, निजस्वरूप के निशाने को-लक्ष्य को वह चूकता नहीं।

२८. स्वरूप के चिंतन में आनंद की तरंगें उल्लसित होती हैं और फिर शीघ्र ही विकल्प टूटकर स्वानुभव होता है।

२९. निर्विकल्पता के समय स्वानुभव के परम आनंद का अनुभवरसास्वाद आता है किंतु उसका विकल्प होता ही नहीं।

३०. स्वरूप के तीव्र रस से बारंबार उसके चिंतन में उपयोग को लगाना, यह स्वानुभव करने का प्रयत्न है।

३१. आत्मस्वरूप के निर्णय में ही जिसकी भूल हो, उसको उसका सही चिंतवन और स्वानुभव नहीं होता।

३२. जिसका ध्यान करना है, उसकी प्रथम सही पहिचान होना आवश्यक है, सही पहिचान बिना ध्यान किसका ?

३३. अहा ! निरालंबी चैतन्य वस्तु ! उसका माहात्म्य आये बिना वह जागृत नहीं होती।

३४. निज स्वरूप की अचिंत्य महिमा से अधिक अन्य की महिमा हो तो उसका उपयोग स्वरूप में लगता नहीं।

३५. सहज शुद्धात्मा की जितनी अनुभूति उतना मैं हूँ, ऐसा मेरे स्वसंवेदन में आता है कि—मैं यही हूँ, आत्मधर्मी इसप्रकार अनुभव करता है।

३६. चैतन्य की अनुभूति का उत्कृष्ट रस जहाँ घोंटने में आया, वहाँ विकल्प टूटकर आनंद की तरंगे उछलती हैं।

३७. धर्मी जीव को परभाव, अनुभव से बाहर रह जाने के कारण से निर्मल पर्यायें अनुभूति में सम्मिलित हो जाती हैं।

३८. अहा ! यह अनुभूति !! जिसके फल में संसार दुःख का नाश और अपूर्व सिद्धसुख की प्राप्ति – इसकी महिमा की क्या बात !!

३९. परम वीतराग जैन धर्म के अनादि से प्रवाह रूप से (एक के बाद एक) निरंतर तीर्थंकरों और संतों ने आत्महित के हेतुभूत आध्यात्म का प्रवाह चालू रखा है।

४०. तीर्थंकरों और संतों का आध्यात्म संदेश झेलकर अनेक मुमुक्षु जीव पवित्रता को प्राप्त हुए हैं।

४१. वीतरागी आध्यात्म रस के पीने से संसार से संतप्त जीव परम तृप्ति (शांति) का अनुभव करते हैं।

४२. अहा! तीर्थंकरों और मुनियों का जीवन तो स्वानुभव के कारण आध्यात्म रस में ओत-प्रोत बन गया है-इनकी क्या बात?

४३. जैन शासन में अनेक श्रावक भी ऐसे धर्मी उत्पन्न हुए हैं कि जिनका आध्यात्म जीवन अनेक जिज्ञासुओं को आध्यात्म की प्रेरणा (रुचि) उत्पन्न कराता है।

४४. सम्यक्त्व और निर्विकल्प स्वानुभव की आत्मस्पर्शी चर्चाएँ भी सम्यक्त्व के अभिलाषी जीव को अत्यंत आनंदकारी लगती है।

४५. स्वानुभवी संतों की अद्‌भुत-अचिंत्य परिणति का चिंतन करते हुए, परिणामों में स्वानुभव का उल्लास जागृत होता है।

४६. भाई, संतों ने स्वयं आत्मा को जानकर, जो किया वही सत् बतलाते हैं।

४७. अहा! आत्मा के स्वानुभव से मोक्ष को साधने का अवसर तेरे हाथ में आ गया है... अतः हे जीव! जागृत हो जा।

४८. संतों के प्रताप से सभी प्रकार से अवसर आ गया है... अब शुभ से पार होकर शुद्धता की अपूर्व धारा उछाल।

४९. मोक्षमार्ग भूतार्थ-शुद्ध आत्मा के आश्रित है, इसके बिना मोक्षमार्ग की साधना नहीं हो सकती।

५०. वस्तु स्वयं की सहज शक्ति से कार्यरूप में परिणमित होती है, ऐसा लक्ष में रखकर स्वाश्रय द्वारा मोक्षमार्ग प्रगट होता है।

५१. प्रत्येक वस्तु के द्रव्य-गुण-पर्याय में ही उसकी मर्यादा रही हुई है; अन्य के द्रव्य-गुण-पर्याय उसकी मर्यादा से बाहर हैं।

५२. वस्तु स्वरूप की व्यवस्था को जानकर संतों ने स्वयं शुद्ध स्वरूप में मति को व्यवस्थित कर दिया है।

५३. स्वानुभव के द्वारा संतों ने मोक्षमार्ग अवधारित निश्चित किया है और इससे यह मार्ग साधने का कार्य किया जाता है।

५४. विपरीत भावों से तेरे आत्मा को संसार समुद्र में डुबानेवाला शत्रु भी तू ही है, और सीधे भाव से तेरे आत्मा को तारनेवाला मित्र भी तू ही है।

५५. श्री वीरस्वामी की वाणी का प्रवाह, उसीप्रकार सीमंधरस्वामी की दिव्य वाणी का प्रवाह भी इस भरतक्षेत्र के संतों पर महान उपकारी है।

५६. वस्तुस्वरूप की जो स्वाधीनता है, उस ही को सर्वज्ञदेव ने अनुभव द्वारा प्रसिद्ध की है और इस ही को संतों ने समझाया है।

५७. स्वाधीन वस्तु स्वरूप की अचल मर्यादा को तोड़ना अशक्य है; इसप्रकार वस्तुस्वरूप को जो समझे, उसको धन्यवाद।

५८. स्वाधीन परिणमन की बात जिसको जम गई, उसका परिणमन अंतरलक्ष तरफ गया और स्वाश्रय से अपूर्व मोक्षमार्ग प्रगट हुआ।

५९. स्वयं की स्वतंत्रता भी जिसको न रुचे, उनकी तो बात ही क्या! स्वाश्रय द्वारा भवबंध को काट डाले, उस ही की बलिहारी।

६०. भाई! पराधीनता के भावों द्वारा तो तैंने अनंत काल व्यर्थ ही दु:ख में खो दिया, स्वाधीनता को तो एक बार देख... एक क्षण तो स्वाधीनता की हवा ले।

६१. निज स्वरूप की महिमा जाने बिना जीव का उपयोग जहाँ-तहाँ भ्रमित होता रहता है; इस भ्रमण को दूर करने का तथा स्वरूप में उपयोग को स्थिर होने का उपाय संत बतलाते हैं।

६२. पर निमित्त को स्व में अकिंचित्कर मानकर स्वतत्त्व का आश्रय लेना, इसी में ही निमित्त को निमित्तरूप में सच्चा स्वीकार है।

६३. तत्त्वत: निमित्त को अकिंचित्कर नहीं मानने से उसने उपादान में किंचित् भी कार्यकारी माना है, उसने निमित्त को सही तरीके से माना ही नहीं है।

६४. कुगुरुओं को मुनि सदृश नहीं मानने से कोई इसप्रकार कहे कि मुनि को मानते ही नहीं, ऐसा कहना असत्य है।

६५. मुनि का शुद्ध निर्ग्रंथ रत्नत्रययुक्त स्वरूप जिसप्रकार है, वैसा ही जानना, अगर इससे विरुद्ध हो तो उसको मुनि नहीं मानना-यही मुनि की सच्ची पहिचान है।

६६. सच्चे मुनि का स्वरूप जो जानते नहीं और कुलिंग को भी मुनि के रूप में जो मानता है, वह वास्तव में मुनि को मानता ही नहीं और न वह मुनि भक्त है।

६७. जीव जब स्वानुभव के द्वारा ग्रंथि भेद (भेदविज्ञान प्रगट करने को ग्रंथि भेद कहा है) करता है, तब सम्यग्ज्ञान की कणिका (अंश) प्रगट होती है, तब ही मोक्षमार्ग प्रारम्भ हुआ माना जाता है।

६८. हे जीव! तत्त्वविचार की शक्ति तुझको मिली है तो अब स्वानुभवरूपी पुरुषार्थ द्वारा मोक्षमार्ग की साधना कर ले।

६९. तेरे आत्मा के आश्रय से ही तेरा मोक्षमार्ग है, तू अकेला अकेला ही अपने में अपने से मोक्षमार्ग की साधना कर सकता है।

७०. हे जीव! चैतन्य की संभाल करके तू तेरे परिणामों को सुधार, जिससे सामने आये हुए कर्मों का बल चकनाचूर हो जायेगा।

७१. जीव के सम्यक् प्रतिभास के अनुसार ही जगत में सबके स्वतंत्र परिणमन होते हैं; आत्मा को साधने जो जाग्रत हुआ, उसके लिये सारा जगत अनुकूल ही है।

७२. जो राग को मोक्षमार्ग मानकर, राग को भला मानकर रुक जाता है और आगे की शुद्ध भूमिका का-जिसको लक्ष नहीं, उसको मार्गानुसारी कहने में आता नहीं।

७३. जिसने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, उसने स्वयं की पर्याय में केवलज्ञान और वीतरागता के आम्रवृक्ष का रोपण किया... शाखा प्रस्फुटित हो... अल्पकाल में फल प्राप्त होंगे।

७४. हे जीव! तू यहाँ तक आया... अब सम्यग्दर्शन प्रगट करके मोक्षमार्गी बन जा।

७५. हे जिनेन्द्रदेव! आपकी जानी और कही हुई वस्तु व्यवस्था हमारे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का कारण है, जिससे आप पूज्य हो।

७६. निरंतर झरता हुआ-स्वाद में आता हुआ जो सुंदर आनंद है, उसकी मुद्रा से युक्त प्रचुर संवेदनस्वरूप स्वसंवेदन से आगम प्रमाण, युक्ति (नय प्रमाण से सुसंगतता) प्रमाण, और श्रीगुरुओं की साक्षात् व परंपरारूप प्रमाण के द्वारा जिसप्रकार श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव आदि ने मोक्षमार्ग का प्ररूपण किया है, ठीक उसीप्रकार आपने भी हमको सही मार्ग-सच्चे सुख का उपाय बतलाया है। अत: आपका अपूर्व उपकार है....

७७. यदि निश्चय से अपनी आत्मा ही हमारे लिये उत्तम-मंगल और शरणरूप है तो ही पंच परमेष्ठी व्यवहार शरण मानना कृतज्ञता है, ऐसा अपूर्व वचन आपने ही कहा है। धन्य अवसर... परम विनय सहित नमस्कार....

७८. हे गुरुदेव! जिनमार्ग का स्वरूप साधकर प्रकाशित करके आपने हमको भवबंधन से छुड़ा करके मोक्षपुरी के रास्ते पर लगाया; यह आपका अपार उपकार है... आपका अवतार धन्य है... आपकी जयंती के मंगल प्रसंग पर अत्यंत भक्तिभाव से यह पुष्पमाला समर्पण करके आपको नमस्कार करते हैं। ●

# जिसे स्वभाव का रंग लगा...

जिसे स्वभाव का रंग लगा, उसे परभाव की बात नहीं रुचती। व्यवहार की-निमित्त की-राग की बात आये, वहाँ जिसे ऐसा उल्लास आये कि—'देखो, यह हमारी बात आयी ?' उससे कहते हैं कि अरे भाई! यह व्यवहार की-राग की-निमित्त की ऐसी पराश्रय की बातें तुझे अपनी लगती हैं और उनका तुझे उल्लास आता है परंतु शुद्धात्मा की (निश्चय की-स्वाश्रय की-शुद्ध उपादान की) बात आये तो वह तुझे क्यों अपनी नहीं लगती ?' अहो, यह मेरे स्वभाव की बात आयी!'—ऐसा उसका उल्लास तुझे क्यों नहीं आता ?—तुझे राग की बात में उत्साह आता है और स्वभाव की बात में उत्साह नहीं आता; वह तो ऐसा सूचित करता है कि तुझे राग की ही रुचि है परंतु स्वभाव की रुचि नहीं है। जिसके हृदय में आत्मा की सच्ची रुचि जागृत हुई और जिसे स्वभाव का रंग लगा, उस जीव को स्वभाव की बात ही अपनी और राग की बात परायी लगती है; शुद्ध स्वभाव ही एक अपना और परभाव सब पराये लगते हैं। इसलिये उसे स्वभाव का ही उल्लास आता है और राग का उल्लास नहीं आता। ऐसा जीव राग से भिन्न शुद्ध स्वभाव का ही अनुभव करता है, क्योंकि उसे स्वभाव का रंग लगा है।

## चैतन्य के एकत्व में परम सुख

अनुभव की मस्ती उसके चित्त को अन्य किसी भी स्थान पर नहीं लगने देती। स्वानुभव के शांतरस से तृप्त-तृप्त है। चैतन्य के आनंद के रस में ऐसा मस्त है कि अब अन्य कुछ भी करने का रहा नहीं। भेदज्ञान के द्वारा अभेद अंत:तत्त्व को मुख्य करके—

मैं ही ज्ञान-दर्शन-चारित्र हूँ, मैं ही मोक्ष हूँ, मैं ही सुख हूँ; मेरा स्वभाव वृद्धि को प्राप्त करता है, पर भाव का मेरे में प्रवेश नहीं। मैं अपने चैतन्य विलास-स्वरूप हूँ। चैतन्य में अन्य किसी की चिंता नहीं है—इसप्रकार धर्मी जीव 'पर' से भिन्न अपने एकत्व स्वरूप का चिंतन करता है। चैतन्य के एकत्व चिंतन में परम सुख है।

# तत्त्वचर्चा

**राजकोट में जब पूज्य स्वामीजी पधारते हैं, तब प्रतिदिन दो समय प्रवचन तथा रात्रि तत्त्वचर्चा चलती है; उसमें से प्रारम्भिकता का थोड़ा सा नमूना यहाँ देने में आता है:—**

**तारीख १३-०४-१९६५**

(१) आत्मा का अनुभव नहीं हो, वहाँ तक क्या करना ?

उत्तर—बारंबार उसका श्रवण, जिज्ञासासहित मनन करके निर्णय करना चाहिये। सत्यनिर्णय अनुभव का साधन है। उसके लिये बारंबार रस आना चाहिये।

(२) संसार के माता-पिता-कुटुंब इत्यादि पर जैसा प्रेम उत्पन्न होता है, वैसा प्रेम आत्मा पर क्यों नहीं आता ?

स्वयं नहीं करता इसलिये।

(३) 'अनंत' पदार्थ के 'अंत' को ज्ञान नहीं जाने तो वह ज्ञान 'अपूर्ण' नहीं है ?

नहीं; अनंत के अंत को नहीं जानता; और उसको अनंतता सहित जैसा है, वैसा जानता है, इसी में ही ज्ञान की यथार्थता और पूर्णता है। अगर अनंत को अंतवाला जाने तो वह ज्ञान 'मिथ्या' हो जाता है।

(४) अगर 'अनंत' को भी ज्ञान जान ले तो वह 'सांत' नहीं हो जाता ?

नहीं; अनंत है, वह अनंतता का त्याग किये बिना ही, अर्थात् अनंतता सहित ही ज्ञान के जानने में आता है। 'अनंतता' ज्ञान के जानने में आवे, इससे अनंतता कहीं सांत नहीं बन जाती। वीतरागमार्ग का रहस्य अद्‌भुत है। अंतर्मुख ज्ञानस्वभाव को पकड़े (ग्रहण करे), तब ही वीतरागमार्ग का रहस्य समझ में आ सकता है।

(५) अपना ध्येय अपने ज्ञानस्वभाव को बना ले। ज्ञानस्वभाव को ध्येय बनाने से पर्याय की संपूर्ण शक्ति (सर्वज्ञता) का भी निर्णय हो जाता है। ऐसा निर्णय करके अंदर में प्रवेश करे तो अल्प काल में केवलज्ञान हो जाता है।

(६) चंद्रलोक में मनुष्य जाकर रह सकता है ?

नहीं; मनुष्य का गमन चंद्रलोक में नहीं। हाँ, कभी मिथ्यादृष्टि मनुष्य मरकर के शुभ भाव से ज्योतिष्क देव होता है और चंद्रलोक में जाता है—ऐसा बन सकता है। कोई लब्धिधारी मुनि इत्यादि चंद्रलोक से भी हजारों योजन ऊँचे मेरुपर्वत पर जा सकते हैं; चंद्रलोक तो हजार महायोजन से भी नीचे है, इससे तो मेरुपर्वत लाख योजन ऊँचा है। फिर भी मनुष्य का गमन मेरुपर्वत पर हो सकता है, परंतु चंद्रलोक में मनुष्य का जाना नहीं बन सकता। और वहाँ रहना भी नहीं बन सकता। उत्तर ध्रुव से आगे हजारों लाखों मील पर विजयार्ध पर्वत पर असाधारण ज्ञान-विज्ञान सहित मानवों के निवासस्थान हैं। इस क्षेत्र का अमुक भाग ही सम पृथ्वी से आधार लाडू के समान ऊँचे उठे हुए-ऊँचाई वाला है (करीब ५००० मील) पीछे गोल नहीं, समान श्रेणी में क्षेत्र है।

(७) चंद्रलोक; पृथ्वी का नाप इत्यादि का वर्णन शास्त्रों में जैसा आता है, वह सच्चा है, या वर्तमान में वैज्ञानिक लोग जैसा कहते हैं, वह सच्चा ?

जिसका जाननेवाला सच्चा, उसका सभी सत्य ही है। जिसका जाननेवाला ही सच्चा नहीं, ज्ञान ही जिसका सच्चा नहीं, उसको पदार्थ का सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता। सर्वज्ञदेव ने अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा जानकर जो वस्तुस्वरूप बतलाया, वही यथार्थ है। (भौतिक विज्ञानवादी ऐसा दावा नहीं करते हैं कि—हमने जो साधन के द्वारा जाना, उतना ही सत्य है।)

(८) ज्ञानस्वयप आत्मा निज के स्वरूप को भूलकर पर के साथ कर्ता-कर्मपने की जो मिथ्याबुद्धि करता है, उसमें आकुलता है; मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, क्रोधादि भाव भी मैं नहीं—ऐसी 'परभाव' से भिन्नता जानकर ज्ञानभावरूप ही रहता हो—उसमें वीतरागी शीतलता और शांति है।

(९) जिसमें एकताबुद्धि हो, उसी में ही कर्ता-कर्मपना माने; जिसको अज्ञान से रागादि परभाव के साथ एकत्वबुद्धि है, उस ही को ज्ञान और राग का कर्ता-कर्म संबंध भासित होता है। ज्ञान की और राग की तो अत्यंत भिन्नता है, फिर भी अज्ञानी उसमें एकता मानकर राग के साथ कर्ताकर्म भावरूप वर्तते हैं। ज्ञानज्योति कर्ताकर्म भाव को तोड़कर अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव करती हुई खिलती है। इसप्रकार ज्ञानी ज्ञान स्वभाव का अनुभवशील है।

(१०) आत्मा क्या ? आत्मा का कार्य क्या ? आत्मा का अकर्तापना कैसा ? और उसका अतीन्द्रिय आनंद कैसा ? इस बात को अमृतचंद्राचार्य स्वामी ने इस समयसार टीका में बताया है। चैतन्य के अतीन्द्रिय अमृत में अमृतचंद्राचार्य झूलते थे। उनको अंतर में सम्यग्ज्ञान

की निर्मल ज्योति प्रगट हुई थी और चैतन्य में अत्यंत लीन रहा करते थे। उन्होंने अध्यात्मरस का अमृत इन कलशों में भरा है।

(११) सम्यग्दृष्टि जीव किसप्रकार पहिचाना जा सके ?

स्वयं उसप्रकार की जानकारी करे तो पहिचान सके। स्वयं को ही सम्यक्त्व की पहिचान नहीं हो तो वह अन्य को कहाँ से पहिचान सकता है ?

(१२) एक सम्यग्दृष्टि दूसरे सम्यग्दृष्टि को पहिचान सकता है क्या ? हाँ; किसप्रकार ? उसप्रकार का परिचय हो तो जरूर पहिचान सकता है।

(१३) श्रुतज्ञान में कितने कर्म हैं ?

श्रुतज्ञान में आठों ही कर्म का अभाव है। जिसने भावश्रुत द्वारा अबद्धस्पृष्ट शुद्धात्मा की अनुभूति प्राप्त कर ली, वह भावश्रुत स्वयं अबद्धस्पृष्ट हो गया है; स्वयं अबद्धस्पृष्ट होकर (कर्म से भिन्न होकर) अबद्धस्पृष्ट आत्मा का अनुभव करते हैं।

(१४) श्रुतज्ञान परोक्ष है या प्रत्यक्ष ?

स्व में उपयोग के समय श्रुतज्ञान अतीन्द्रिय होने से उसको प्रत्यक्ष भी कहते हैं और पर को जानने में वह परोक्ष है।

(१५) ११वें-१२वें गुणस्थान की वीतरागता में कोई अंतर है ?

नहीं; दोनों की वीतरागता समान है। ११ से १४वें गुणस्थान तक यथाख्यात वीतराग-चारित्र एक ही प्रकार का है और एक जैसा ही है, अर्थात् यथाख्यात वीतराग-चारित्र इन चारों गुणस्थानों में एक समान ही है। मात्र ११वें गुणस्थान में औपशमिक यथाख्यातचारित्र है।

(१६) मोक्षमार्ग कहाँ तक है ?

१२वें गुणस्थान तक भावश्रुत, वह साधकभाव है; केवलज्ञान वह साध्यभाव है। किसी समय १४वें गुणस्थान के आखिर (अंत) समय तक मोक्षमार्ग कहने में आता है और सिद्धदशा मोक्ष है। मोक्षमार्गरूप साधकभाव का प्रारंभ तो चौथे गुणस्थान से ही हो जाता है। 'आंशिक निश्चय धर्म' चतुर्थ गुणस्थान से शुरु होता है।

(१७) जीव स्वलक्ष्य क्यों नहीं करता ?

स्वयं कर्ता होकर परलक्ष्य में और पर की प्रीति में रुक जाता है; यह स्वयं कर्ता बनकर 'स्व' की प्रीति से बारंबार स्वलक्ष्य का अभ्यास करे तो स्व का लक्ष्य जरूर प्राप्त हो जाये। जिसप्रकार स्वयं 'पर' की प्रीति करता है, उसीप्रकार वह 'स्व' की प्रीति करे तो स्वलक्ष्य और स्वानुभव होता है।●

# जिन वचन का सार

शुद्धात्मा की आराधना द्वारा रत्नत्रय की प्राप्ति करना, वह जिन वचन का सार है। सबसे उत्कृष्ट ऐसा जो शुद्धात्मा, उसकी भावना जन्म-मरण का नाश करनेवाली है। हे भव्य! शरीर में जरा-मरण देखकर तू भयभीत न हो, अजर-अमर आत्मा को भज! उत्साहपूर्वक उसी को भा... उसकी भावना से तुझे परम आनंद की प्राप्ति होगी। एक बार आत्मा का प्रेम कर... और जगत का प्रेम छोड़!

[परमात्मप्रकाश - प्रवचन]

जिनवचन को प्राप्त किये बिना अर्थात् जिनवचन में कहे हुए रत्नत्रय को प्राप्त किये बिना जीव ने जहाँ भ्रमण न किया हो, ऐसा कोई स्थान इस जगत में नहीं है। जिनवचन के सार को ग्रहण न करने से जीव ने संसार में सर्वत्र भ्रमण किया है। देखो, जिनवचन का सार तो यह है कि रत्नत्रय की प्राप्ति हो। रत्नत्रय की प्राप्ति शुद्ध आत्मस्वभाव की आराधना से ही होती है, इसलिये शुद्ध आत्मा की आराधना (उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान, उसमें लीनता), वह जिनवचन का उपदेश है। ऐसे जिनवचनों का सार जो जीव ग्रहण करता है, वह रत्नत्रय को प्राप्त करके भवसागर से पार हो जाता है।

अरे, आनंदस्वरूप आत्मा परमार्थ सुख से भरपूर है, इन्द्रियसुख की कल्पना भी उसमें नहीं है। इन्द्रों के जो इन्द्रियसुख हैं, वे भी आनंदस्वरूप आत्मा से विरुद्ध हैं। इन्द्रिय सुखों में आकुलता है, राग है, दुःख है, वह वास्तव में आत्मा की वस्तु नहीं है। शुद्धनय को ही आत्मा कहा जाता है कि जो आनंद से भरपूर है, जिसमें आकुलता नहीं है। ऐसे आत्मा को रागरहित समाधि में देखना सो सम्यग्दर्शन है। धर्मात्मा अपने ध्यान में ऐसे परम आनंदस्वरूप आत्मा को ही ध्याता है, वही उपादेय है और उससे विरुद्ध ऐसे इन्द्रियसुख हेय हैं।

आत्मा सदा शुद्ध निजस्वभावरूप ही है, वह कभी परभावरूप नहीं हो गया है- इसप्रकार शुद्धदृष्टि से देखने पर शुद्ध आत्मा दृष्टिगोचर होता है। अशुद्ध पर्याय में जो रागादि परभाव हैं, उन स्वरूप आत्मा नहीं हो गया है-ऐसा शुद्धनय के ज्ञाता योगीश्वर कहते हैं। ऐसे आत्मा को अंतर में देखना-अनुभव करना ही सुख का मार्ग है, यही जिन का उपदेश है।

जिसमें से सतत् सुख का प्रवाह बहे, ऐसा सुखसमुद्र आत्मा है और वह शुद्धोपयोग द्वारा अनुभव में आता है। ऐसा अनुभव जिसे नहीं है, वह जीव शुभ और अशुभरूप से परिणमित होता हुआ कर्मबंधन से चारगति में भटकता है। तथापि शुद्ध पारिणामिक परमभाव की दृष्टि से देखें तो आत्मा विकार का कर्ता नहीं है, उसे कर्मबंध भी नहीं है और कर्म से छूटनेरूप मोक्ष भी नहीं है; सदा कर्मरहित शुद्ध ही है—ऐसे स्वभाव में बंधन-मोक्ष क्या? ऐसे स्वभाव को ध्येयरूप बनाकर एकाग्र होने से पर्याय में बंधन टूटकर मुक्ति होती है। जिनवचन का सार भी यही है कि जिससे बंधन टूटे और मुक्ति हो।

शुद्धात्मदृष्टि में तो आत्मा को बंधन ही नहीं है। इसलिये बंधन से छूटनेरूप मुक्त होना भी उसमें नहीं है। जिसप्रकार पहले जो बन्दीगृह में बँधा हो और फिर छूटे उसे मुक्त हुआ कहा जाता है; परंतु जो मनुष्य बन्दीगृह में गया ही नहीं, मुक्त ही है, उसे 'तू बन्दीगृह से मुक्त हुआ' ऐसा कहना नहीं रहता। उसीप्रकार जीव को पर्याय में बंधन है, इसलिये सम्यग्दर्शनादि द्वारा पर्याय में मुक्त होना बनता है, परंतु शुद्ध स्वभाव की दृष्टि में तो आत्मा ने कर्म का स्पर्श ही नहीं किया है, उसे बंधन ही नहीं है, इसलिये 'आत्मा बंधन से मुक्त हुआ'—ऐसा कहना शुद्ध द्रव्यदृष्टि में नहीं बनता। पर्याय में बंध-मोक्ष है, उसका कर्ता आत्मा स्वयं है। जो जीव शुद्धात्मा की अनुभूति नहीं करता और अशुद्धात्मा का ही अनुभव करता है, वह अपने अशुद्धभाव से बँधता है और जो जीव शुद्धात्मा की अनुभूति करता है, वही संवर-निर्जरा तथा मोक्ष प्राप्त करता है। इसमें मोक्ष तो क्षायिकभावरूप है, संवर-निर्जरा, वह उपशम-क्षयोपशम या क्षायिक भावरूप है; शुभाशुभभाव तो उदयभावरूप हैं, वे कहीं संवर-निर्जरा या मोक्ष का कारण नहीं हैं, वे तो बंध का ही कारण हैं। शुद्धद्रव्य तो परमपारिणामिकभावरूप है।

शुद्ध द्रव्यस्वभाव त्रिकाल एकरूप है; उस स्वभाव में ही यदि बंधन हो तो बंधन कभी छूट नहीं सकता। उसमें बंधन नहीं है, इसलिये बंधन था और छूटा—ऐसे पर्याय के जो प्रकार हैं, वे शुद्ध स्वभावदृष्टि में दिखायी नहीं देते। पर्याय में बंध-मोक्ष का कर्ता आत्मा है। —इसप्रकार द्रव्य और पर्याय दो-रूप वस्तु है। पर्याय को सर्वथा न माने तो उसे वस्तु की खबर नहीं है, और क्षणभंगरूप पर्याय को ही संपूर्ण वस्तु मान ले तो उसे भी वस्तु की खबर नहीं है। दोनों प्रकारों को ज्यों का त्यों जानना चाहिये। दोनों को जानकर शुद्धस्वभाव को उपादेय करने से पर्याय में भी शुद्धता प्रगट हो जाती है। बंध-मोक्षभाव का कर्तृत्व पर्याय में है, द्रव्य में नहीं है।

अनंत सुख का धाम ऐसा यह आतमराम है। शुद्ध निश्चय से वह सिद्धसमान शुद्ध है, वही निर्विकल्प समाधि में उपादेय है अर्थात् उसे ध्येय बनाकर एकाग्र होने से ही निर्विकल्प समाधि होती है और पर्याय में बंध, मोक्ष, मोक्षमार्ग आदि भाव हैं, वह व्यवहारनय का विषय है। मोक्षमार्ग स्वयं तो निश्चयरत्नत्रयरूप है, वह स्वयं कोई व्यवहार नहीं है, परंतु उस मोक्षमार्ग पर्याय का भेद लक्ष में लेने से विकल्प होता है, इसलिये वह व्यवहारनय का विषय है, अर्थात् उसके आश्रय से निर्विकल्पता नहीं होती। पर्याय में मोक्ष को उपादेय कहा जाता है, परंतु वह मोक्ष हो कैसे?—कहीं मोक्षपर्याय की ओर दृष्टि लगाने से तो मोक्ष नहीं होता; मोक्षमार्ग की ओर दृष्टि लगाने से तो विकल्प और बंधन होता है; शुद्ध द्रव्य पर दृष्टि लगाने से पर्याय में मोक्षदशा हो जाती है। ऐसे शुद्ध द्रव्य को उपादेय करके उसमें उपयोग लगाने से निर्विकल्प समाधि होती है; निर्विकल्प समाधि में यही उपादेय है, उसके परम आनंद का अनुभव निर्विकल्प समाधि में ही आता है; पर में या राग में उस आनंद का स्वाद नहीं है। ऐसा जानकर स्वद्रव्य में उपयोग लगाना, वह जिनवचन की सच्ची उपासना है।

जन्म या मरण, बचपन या बुढ़ापा, रंग या रोग, यह सब शरीर में है—जीव में नहीं है। जीव तो ज्ञान-दर्शन-आनंद का धाम, अमूर्तिक, जन्म-मरण रहित, रोग और रंग रहित है। शरीर का रंग काला हो, रोगी हो, वहाँ खेद करता है, परंतु भाई! तू कहाँ काला है? उसीप्रकार शरीर सुंदर गोरा हो, वहाँ हर्ष करता है, परंतु भाई! तू कहाँ गोरा है? तेरा आत्मा कहीं काला या गोरा नहीं है; शरीर काला या गोरा है, वह कहीं तू नहीं है। अरे, आत्माराम! तू तो ज्ञानमय है, ज्ञान ही तेरा स्वरूप है कि जो तुझसे कभी भिन्न नहीं होता। इसलिये हे भव्य! शरीर में जरा-मरण देखकर तू भयभीत न हो, अजर-अमर आत्मा की ही भावना कर! जहाँ आत्मा का नाश ही नहीं है, वहाँ मरण का भय कैसा? सबसे उत्कृष्ट ऐसा जो शुद्धात्मा, उसकी भावना जन्म-मरण का नाश करनेवाली है।

हे जीव! इस शरीर का छेदन-भेदन हो, यह नष्ट हो जाये, उसमें तू खेद-खिन्न मत हो; उत्साहपूर्वक अपने निर्मल आत्मा की ही भावना कर कि जो आत्मा परमात्मपद को देनेवाला है और जिसकी भावना से भव का पार प्राप्त होता है। अरे, इस शरीर के संयोग-वियोग ही जहाँ तेरे नहीं हैं, वहाँ लक्ष्मी या स्त्री-पुत्रादि तो तेरे कहाँ से होंगे? उनके आने-जाने में हर्ष-शोक कैसा! वह कुछ भी तेरा नहीं है; तेरा तो ज्ञान है, तू तो ज्ञानमय है। उस ज्ञानमय आत्मा की

भावना करने से तुझे परमानंदस्वरूप परमात्मपद की प्राप्ति होगी।

❀ शरीर तो रोग का धाम है, तेरा आत्मा आनंद का धाम है।

❀ शरीर को तो भव की मूर्ति कहा है, आत्मा मोक्ष की मूर्ति है।

❀ शरीर तो अशुचि का धाम है, आत्मा पवित्रता का पिण्ड है।

❀ शरीर तो क्षणभंगुर-विनाशीक है, आत्मा अविनाशी है।

❀ शरीर तो अंधा जड़ है, आत्मा जागृत चैतन्यमूर्ति है।

—ऐसी स्पष्ट भिन्नता जानकर हे जीव! तू आत्मभावना कर और शरीर की ममता छोड़—

**छेदाय या भेदाय, कोई ले जाय नष्ट बने भले,**
**या अन्यरूप से जाय, परंतु परिग्रह नहीं मेरा अरे!**

अरे, मैं तो आत्मा हूँ, यह वृद्धावस्था, रोग या मरण तो शरीर में हैं, मैं कहीं शरीर के नष्ट होने से नहीं मरता, मैं तो शरीर से भिन्न नित्य स्थायी हूँ—ऐसा भान करके, हे जीव! तू मरण का भय छोड़ और आतमराम को ही ध्या! आत्मा के ध्यान से तेरे भव का अवसान हो जायेगा अर्थात् भव का अंत हो जायेगा और अविनाशी ऐसा सिद्धपद प्रगट होगा।

अरे आत्मा! एक बार तो शरीर का पड़ोसी होकर आत्मा का अनुभव कर! बाह्य की कोई प्रतिकूलता आत्मा में प्रविष्ट नहीं हो जाती, इसलिये उसका भय मत कर। तेरे चैतन्य-गढ़ में पर का प्रवेश नहीं है, उसमें रोगादि प्रतिकूलता का प्रवेश नहीं है, उसमें मरण का प्रवेश नहीं है; उसमें तो आनंदादि निज निधान भरे हैं।—ऐसे निजभाव को कभी न छोड़े तथा परभाव का कभी ग्रहण न करे—ऐसा आत्मस्वभाव है; उसका ज्ञान किसी बाह्य पदार्थ द्वारा नहीं होता; अंतर के अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा वह ज्ञान होता है।

जीव के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव अलग और शरीर के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव अलग; दोनों एक-दूसरे में प्रविष्ट नहीं होते, एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करते, शरीर के क्षेत्र में आत्मा ने प्रवेश नहीं किया है, आत्मा तो अपने असंख्य अरूपी प्रदेश में ही विद्यमान है। इसप्रकार निजात्मा को जानकर उसके ध्यान में तत्पर हो; उसके भाव में समरसी भावरूप अतीन्द्रिय सुख का अनुभव है।

शास्त्र कहते हैं कि भाई! अपने निजस्वरूप को देखने के लिये हजार सूर्यसमान हो

जा... और पर के ओर की अपनी आँख मूँदकर निज-स्वरूप को देख। अतीन्द्रिय ज्ञानरूप सहस्त्र किरणों से जगमगाते हुए चैतन्य सूर्य से अपने आत्मस्वरूप का अवलोकन करने से तुझे परम आनंद होगा। पर के अवलोकन में कहीं सुख नहीं है। स्व को जानने से ज्ञान और सुख दोनों साथ प्रगट होते हैं। पर में सुख की कल्पना छोड़कर सुख के समुद्र ऐसे निजस्वरूप के अवलोकन द्वारा परम आनंद का अनुभव कर। अरे, जहाँ बाह्य इन्द्रियाँ ही तेरी नहीं हैं, वहाँ इन्द्रियविषयों में सुख की कल्पना तूने कहाँ से खड़ी की? और अतीन्द्रिय स्वभाव में जहाँ वास्तव में सुख भरा है, उसे क्यों भूल गया? निजस्वरूप को निहारने के लिये हजार सूर्य समान ज्ञानचक्षु को खोल। बाह्य में ही देखने की आदत पड़ गई है, उसे छोड़ और अंतरस्वभाव को देखने का अभ्यास कर!

संसार में किसी भी क्लेश के या प्रतिकूलता के प्रसंग आये हों परंतु ज्ञानी को जहाँ चैतन्य का स्फुरण हुआ कि वे सब क्लेश न जाने कहाँ भाग जाते हैं? किसी भी प्रसंग में उसका श्रद्धा-ज्ञान घेरा नहीं जाता। जहाँ चिदानंद-हंस का स्मरण किया, वहाँ दुनियाँ के सब क्लेश दूर भाग जाते हैं। संसार की थकान उतारने की यह जड़ी-बूटी है।

# अचिंत्य महिमावंत
# आत्मशक्ति

**पिछले मगसिर-पौष महीने में समयसार की ४७ शक्तियों पर जो भावपूर्ण प्रवचन हुए उनका कुछ मुख्य भाग यहाँ दिया जा रहा है।**

लेखांक-३ अंक - २५६ से आगे

**( ६३ ) जैनी नीति और अनीति**

आत्मा का मुख्य लक्षण ज्ञान है; उस ज्ञानलक्ष्मी से ही आत्मा शोभित है। ज्ञानलक्ष्मी अनंत शक्ति से भरपूर है। ज्ञान अकेला ही प्रगट नहीं होता, उसके साथ जीवत्व, प्रभुत्व, वीर्य, सुख, स्वच्छता, विभुता, विकास, सत्पना, उत्पाद-व्यय-ध्रुवता, अकर्तृत्व, स्वकर्तृत्व आदि अनंत शक्तियाँ अपने-अपने निर्मलभावोंसहित उल्लसित होती हैं। ऐसे अनेकांतमय ज्ञानस्वरूप से आत्मा को जानना, सो जैननीति है; इससे विरुद्ध रागादि विकारयुक्त स्वभाव मानना, सो अनीति है। जैनी नीति कहो या मोक्षमार्ग कहो; अनीति कहो या मिथ्यात्व कहो अथवा संसारमार्ग कहो। विकार को आत्मा का स्वरूप मानने से आत्मा के गुणों की निर्मलता का घात होता है, वह हिंसा है और उस हिंसा में से आत्मा को सम्यग्दर्शनादि द्वारा बचाना तथा आत्मगुणों की रक्षा करना, वह आत्मदया है;—ऐसी दया, वह धर्म का मूल है। सम्यक्त्वादि निर्मल पर्याय ही धर्म है।

**( ६४ ) धर्मात्मा के दो धाराएँ... परंतु तन्मयता एक में ही।**

धर्मी को स्व-परप्रकाशक ज्ञान हुआ, उस भूमिका में साथ जो शुभाशुभ विकल्प रहते हैं, वे विकल्प ज्ञान के ज्ञेयरूप से वर्तते हैं, परंतु ज्ञान के कार्यरूप से नहीं वर्तते; ज्ञान उसके ज्ञातारूप से वर्तता है परंतु कर्तारूप से नहीं वर्तता। दोनों अपनी-अपनी धारा में भिन्न-भिन्न वर्तते हैं। ज्ञानभाव में धर्मी तन्मय होकर वर्तता है परंतु रागादि भाव में तन्मय नहीं होता।

साधकदशा में धर्मात्मा को ज्ञान और राग की दोनों धाराऐं प्रवर्तमान होने पर भी उसे तन्मयता एक में ही है, राग तो मात्र परज्ञेयरूप से वर्तता है।

**( ६५ ) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभाव**

ध्रुवता एवं क्षणिकता - यह दोनों द्रव्य के स्वभावभूत हैं। ध्रौव्य तथा उत्पाद-व्यय द्रव्य के स्वभावभूत ही हैं तो दूसरा उनमें क्या करेगा? ध्रुवता अक्रमरूप है और उत्पाद-व्यय क्रमरूप है। सर्व गुण एक साथ वर्तते हैं और यथावत् ध्रुव रहते हैं, इसलिये ध्रुवता गुण अपेक्षा से है और उत्पाद-व्यय पर्याय अपेक्षा से हैं। वस्तु की समस्त पर्यायें एकसाथ उत्पन्न नहीं होती परंतु क्रमानुसार होती हैं—ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है। पर्याय भी वस्तु का स्वभाव है। वस्तु का वस्तुत्व परिणाम द्वारा प्रगट होता है। द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों को स्पर्श करता है, परंतु पर को स्पर्श नहीं करता। इसप्रकार उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य तीनों से आलिंगित ऐसे स्व-द्रव्य को लक्ष में लेने से सम्यग्दर्शनादि निर्मल परिणाम प्रगट होते हैं और ऐसे द्रव्यस्वभाव को देखनेवाले को उस स्वभाव में विकार भासित नहीं होता; इसलिये विकार से पृथक् होकर वह ज्ञाता-साक्षी-अकर्ता हुआ। ऐसे निर्मल ज्ञाता परिणाम, वह धर्म है।

**( ६६ ) सिद्धपद की ओर परिणति का प्रवाह**

जो उत्पाद-व्यय-ध्रुवता है, उतना ही द्रव्य का अस्तित्व है। आत्मा का स्वभाव सिद्धसमान है, परंतु वह भासित किसे हुआ? कि जिसने अपने स्वभाव पर दृष्टि लगायी और रागादि में से दृष्टि को हटाया... उसने निर्मल पर्याय द्वारा जाना कि मेरा स्वभाव सिद्धसमान है और इसप्रकार जिसने अपने स्वभाव का स्वीकार किया, उसकी परिणति का प्रवाह सिद्धपद की ओर प्रवाहित हुआ अथवा स्वभाव की ओर मुड़ गया। उसकी परिणति अब स्वभाव का ही स्पर्श करती है, परभाव को स्पर्श नहीं करती... वह संयोग की भीड़ में दब नहीं जाती, क्योंकि वह संयोग का स्पर्श ही नहीं करती।

**( ६७ ) कैसा आत्मा देखे तो आत्मा को देखा कहा जाये ?**

ध्रुव, सो त्रिकाल है और पर्याय, वह स्वकाल है। ऐसे ध्रुव और उत्पाद-व्यय द्वारा द्रव्य का अस्तित्व प्रति समय पूर्ण है। अकेले स्वभावभूत स्व-अस्तित्व को ही देखो तो उसमें विकार दिखायी नहीं देता, निर्मल परिणमनसहित आत्मा ही दृष्टिगोचर होता है। जो ऐसे स्वभाववाले आत्मा को देखे, उसी ने आत्मा को देखा कहा जाता है। जो आत्मा को विकारयुक्त

ही देखता है, उसने उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वभावी आत्मा को नहीं देखा, सच्चे आत्मा को उसने नहीं देखा; परंतु अभूतार्थ आत्मा को ही उसने सच्चा आत्मा मान लिया है।

**( ६८ ) आत्मा को मूर्त माने, वह मूर्ख है**

शरीर के संबंध से आत्मा को वास्तव में मूर्त मान ले तो वह मूर्ख है। अरे जीव! अपना अमूर्तपना छोड़कर शरीर के संबंध से तू मूर्त होने गया। शरीर के संयोग में विद्यमान आत्मा वर्तमान में भी अमूर्त ही है, उसे मूर्त कहा, वह तो उपचार से ही कहा है, वास्तव में मूर्त नहीं है। मूर्त तो शरीर ही है; आत्मा तो सदैव उपयोग स्वरूप अमूर्त ही है। ऐसे आत्मा को जो जाने, उसी ने सच्चे आत्मा को जाना कहा जाता है। अंतर्मुख देखनेवाले को अपना आत्मा अमूर्त ही भासित होता है, मूर्तपना किंचित् भासित नहीं होता। जहाँ कर्म का संबंध ही भासित नहीं होता, वहाँ मूर्तपना कैसा? अरे, अनंतशक्तिवान आत्मस्वभाव में जहाँ विकारीपना भी नहीं है, वहाँ मूर्तिकपना कैसा? आत्मा को मूर्त देखना, वह तो अत्यंत स्थूलदृष्टि है। आत्मा में अमूर्त शक्ति है, उसके उत्पाद-व्यय कहीं मूर्तरूप नहीं हैं। मूर्त तो जड़ है। आत्मा कहीं जड़ नहीं है कि वह मूर्त हो।

**( ६९ ) उत्पाद-व्यय-ध्रुव प्रवचनसार के... और उत्पाद-व्यय-ध्रुव समयसार के...**

जगत के समस्त द्रव्य अपने-अपने स्वभाव में विद्यमान सत् हैं और उत्पाद-व्यय-ध्रुवता, वह सत् का स्वभाव है; उस स्वभाव में द्रव्य विद्यमान है। इसप्रकार सर्व द्रव्यों के सत् स्वभाव का वर्णन प्रवचनसार गाथा ९९ आदि में बतलाया है; वहाँ तो निर्मलता या विकार—सबका आत्मा के सत् स्वभाव में समावेश होता है।

और यहाँ आत्मा की शक्तियों के वर्णन में जो उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्वशक्ति बतलायी है, उस शक्ति के स्वभाव में तो अकेली निर्मलता ही आती है, मलिनता उसमें नहीं आती; वहाँ पर से भिन्नता बतलायी थी, यहाँ विकार से भी आत्मा की भिन्नता बतलायी है।

यद्यपि ९९वीं गाथा में जो उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप सत् स्वभाव बतलाया है, उस स्वभाव का जो निर्णय करे, उसे तो सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन होता ही है अर्थात् उसको निर्मल पर्याय का प्रारम्भ तो हो ही जाता है; तथापि जो विकार भाव हो, वह भी आत्मा के उत्पाद-व्यय में समावेश है, उसका भी आत्मा के सत् में समावेश है, क्योंकि वहाँ प्रमाण के विषयरूप द्रव्य का वर्णन है।

यहाँ साधक की पर्याय में जो विकार हो, उसे स्वद्रव्य में नहीं गिनते, उसे आत्मा नहीं मानते परंतु अनात्मा मानते हैं। निर्मल शक्तियाँ और उनका निर्मल कार्य ही आत्मा है। शुद्धनय के विषयरूप शुद्ध आत्मा को ही यहाँ आत्मा कहा है; साथ ही निर्मल परिणति का भी उसमें समावेश हो जाता है परंतु विकार का समावेश नहीं होता। शुद्धद्रव्य में स्थापित दृष्टि द्वारा वह निर्मल भावरूप ही उत्पन्न होता है, विकार से भिन्नरूप ही उत्पन्न होता है। शुद्ध आत्मा विकार का स्पर्श नहीं करता, वह तो अपने निर्मल उत्पाद-व्यय-ध्रुव का ही स्पर्श करता है।

प्रवचनसार में जो उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वभाव कहा है, उसमें तो उदयादि पाँचों भावों का जीव में समावेश होता है और यहाँ ४७ शक्तियों में आत्मा का जो उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वभाव कहा है, उसमें उदयभाव का समावेश नहीं होता, उसमें तो निर्मल भाव ही आते हैं।

**( ७० ) आत्मा को जाननेवाला ज्ञान इन्द्रियातीत है**

जो अमूर्त आत्मस्वभाव को जानता है, वह मात्र इन्द्रियज्ञान में नहीं अटकता, क्योंकि इन्द्रियज्ञान का विषय तो मूर्त ही है; अमूर्त आत्मा को जाननेवाला ज्ञान तो इन्द्रियातीत है। जहाँ इन्द्रियातीत होकर स्वभाव को पकड़ा, वहाँ कर्म का संबंध भी आत्मा में भासित नहीं होता, अकेला शुद्ध ज्ञानादिस्वभाव का पिण्ड ही भासित होता है।

**( ७१ ) तुझे शर्म नहीं आती!**

अरे चैतन्य प्रभु! तेरी ऐसी शक्ति है कि अपनी शक्ति की एक टंकार में तू केवलज्ञान प्राप्त कर ले... और तू कहता है कि मुझे अपना स्वरूप समझ में नहीं आता... ऐसा कहते हुए तुझे शर्म नहीं आती! और भव के अभाव की बात सुनकर तुझे थकावट मालूम होती है! अरे, साधकदशा के तेरे एक विकल्प की इतनी शक्ति है कि एक बार इन्द्र के इन्द्रासन को भी हिला दे.... जन्म लेते ही क्षणभर के लिये तीन लोक में खलबली मचा दे।—जिसके एक विकल्प में इतनी शक्ति, उसके संपूर्ण पवित्र स्वभाव का सामर्थ्य कितना होगा?—ऐसे सामर्थ्यवाला तू कहे कि मुझे अपना स्वरूप समझ में नहीं आता... यह तो तेरे लिये शर्म की बात है।

**( ७२ ) आत्मस्वभाव समुद्र के समान है, उसमें विकार का कर्तृत्वरूपी मैल नहीं समाता**

यह चैतन्य सागर अनंतशक्ति से भरपूर है... उसमें एक ऐसी शक्ति है कि वह ज्ञाता परिणाम को ही करे और उससे विरुद्ध विकारपरिणामों का अकर्ता रहे। विकार का कर्तृत्व एक भी शक्ति के स्वभाव में नहीं है। शक्तिस्वभाव से देखा जाये तो आत्मा में विकार का कर्तृत्व या

विकार नहीं है। ऐसे स्वभाव को दृष्टि में लेने से उसकी शक्तियाँ निर्मल परिणमन के झूले में झूलती हैं। विकार के कर्तृत्व को अपने में समा ले, ऐसा आत्मा का स्वभाव ही नहीं है। जिसप्रकार समुद्र का स्वभाव ही ऐसा है कि मैल का अपने में समावेश नहीं करता, उछालकर बाहर फेंक देता है; उसीप्रकार यह चैतन्य समुद्र उस विकाररूपी मैल को अपने में समाने नहीं देता... जहाँ विकार का भी कर्तृत्व आत्मा में नहीं समाता, वहाँ पर के कर्तृत्व की तो बात ही कहाँ से होगी ?

**( ७३ ) जो आत्मा से भिन्न, वह निषेध योग्य**

राग में ज्ञानगुण नहीं है; जिसमें ज्ञानगुण न हो, उसे आत्मा कैसे कहा जायेगा ? इसलिये राग, वह आत्मा नहीं है। आत्मा की शक्ति के निर्मल परिणाम से राग के परिणाम भिन्न हैं। आत्मा से भिन्न कहो या निषेध करनेयोग्य कहो। मोक्षार्थी को जिसप्रकार पराश्रित राग का निषेध है; उसीप्रकार पराश्रित ऐसे समस्त व्यवहार का भी निषेध ही है। राग और व्यवहार दोनों एक ही कक्षा में हैं, दोनों पराश्रित होने से निषेधयोग्य हैं और उनसे विभक्त चैतन्य का एकत्वस्वभाव ही परम आदरणीय है।

**( ७४ ) अस्तित्व दो का; आदरणीय एक**

साधकभूमिका में राग और ज्ञान दोनों एक समय में हैं, तथापि राग परिणाम से भिन्न ही ज्ञान परिणमन चलता है और ज्ञानपरिणाम से रागपरिणाम भिन्न ही है... एक ही काल में दोनों होने पर भी दोनों में एकता नहीं है। धर्मी को ज्ञान का कर्तृत्व है, राग का अकर्तृत्व है।

**ज्ञान सो आत्मा... राग सो आत्मा नहीं;**
**आनंद सो आत्मा... दुःख सो आत्मा नहीं।**

निश्चय-व्यवहार दोनों भले ही एक साथ हों, दोनों का विद्यमानपना होने पर भी, साधक की दृष्टि में जो निश्चय है, वही सच्चा आत्मा है और व्यवहार है, वह सच्चा आत्मा नहीं है।—ऐसे आत्मा के अवलंबन से ही साधकपना हुआ है, टिका है, बढ़ता है और पूर्ण होगा।

**( ७५ ) संतों द्वारा सेवन किया गया स्वतत्त्व**

अरे, तेरा स्वतत्त्व कितना महान है और कितना शुद्ध है... उसे तो लक्ष में ले! इन्द्र-चक्रवर्ती-मुनि और तीर्थंकर आदर सहित जिस मार्ग का सेवन करते हैं, वह क्या रागयुक्त होगा ? अरे भाई, संपूर्ण वीतरागता के पिण्ड शुद्ध चैतन्यतत्त्व का ही वे सब सेवन कर रहे हैं

और तू राग के सेवन द्वारा उस मार्ग में आना चाहता है ? तुझे तीर्थंकरों के मार्ग की खबर ही कहाँ है ? राग में तीर्थंकरों का मार्ग नहीं है, निर्मल-पवित्र चैतन्यस्वभाव में ही तीर्थंकरों का मार्ग है। राग के कर्तृत्व में रमण करे, वह 'आत्मा' नहीं है; राग के कर्तृत्व से उपरम प्राप्त करे, वही 'आत्मा' है, और ऐसे आत्मा का धर्मात्माओं ने सेवन किया है। जो राग के कर्तृत्ववाले आत्मा का सेवन करता है, वह सच्चे आत्मा का सेवन नहीं करता परंतु अनात्मा का-आस्रव का सेवन करता है—अधर्म का सेवन करता है; भगवान के कहे हुए मार्ग का वह सेवन नहीं करता—उसे जानता भी नहीं है। [ क्रमशः ]

## आत्मार्थी को आत्मा की अप्राप्ति शोभा नहीं देती

भरे हुए सरोवर के पास जाये और पानी पिये बिना प्यासा ही रहे तो क्या यह ठीक है ? नहीं.... पानी पीकर तृप्त हो, वही उचित है। उसीप्रकार आनंद से भरपूर सरोवर चैतन्य भगवान आत्मा के निकट जाकर अंतर में अनुभव का अभ्यास करे और आत्मा की प्राप्ति न हो तो क्या यह ठीक है ? नहीं; स्वानुभव की प्राप्ति हो, वही उचित है। अन्तर्स्वभाव के सन्मुख जावे और अनुभव की अप्राप्ति रहे-यह क्या ठीक है ? नहीं; स्वयं भगवान चैतन्य के पास जावे और उसकी प्राप्ति न हो, ऐसा नहीं हो सकता। श्रेष्ठ राजा के पास गया मनुष्य खाली हाथ वापिस नहीं आता। तो जगत के सर्व कोलाहल को छोड़कर जो जीव इस चैतन्य भगवान के पास आया और उसके अनुभव में निरंतर बारंबार अभ्यास करता है, उसको स्वानुभव की प्राप्ति होती ही है। इसप्रकार की आत्मप्राप्ति का निश्चय आश्वासन संतों ने समयसार में दिया है।

# साधक किस प्रकार आत्मा को साधता है ?

अनादिकालीन भव दु:खों से थककर जो परमात्मस्वरूप समझने के लिये
उत्सुक है, उसे उसका स्वरूप समझाकर संत कहते हैं कि—हे वत्स!
शुद्धात्मा के ऐसे उपदेश की दुर्लभता समझकर, उसकी प्राप्ति के
इस उत्तम अवसर में तू प्रमाद छोड़कर जागृत हो.....
और अपने शुद्धात्मा को अंतर्प्रयत्न
द्वारा अनुभव में ले!

[परमात्मप्रकाश-प्रवचन]

यह जीव अनादि काल से संसारभ्रमण में दु:खी हो रहा है। क्यों दु:खी हुआ ?—कि अपने शुद्ध परमात्मस्वरूप को न जानने से दु:खी हुआ। अब उन दु:खों से छूटने के लिये जो परमात्मस्वरूप जानने को उत्सुक हुआ है, ऐसे जीव को परमात्मा का स्वरूप समझाने के लिए यह शास्त्र है। इस शास्त्र में शुद्धात्मा के उपदेश की प्रधानता है। शुद्धात्मा का ऐसा उपदेश प्राप्त होना जीव को अति दुर्लभ है। भाई, शुद्धात्मा के ऐसे उपदेश की अत्यंत दुर्लभता समझकर, उसकी प्राप्ति के उत्तम अवसर में तू प्रमाद को छोड़कर जागृत हो और अपने शुद्धात्मा को अंतर्प्रयत्न द्वारा अनुभव में ले।

यद्यपि संसार में तो एकेन्द्रियपने में से दो इन्द्रियपना होना भी अनंत दुर्लभ है। एकेन्द्रिय जीव तो अनंतानंत हैं और त्रयपर्यायवाले जीव तो उनके अनंतवें भाग (असंख्यात) ही हैं। इसप्रकार एकेन्द्रिय में से दो इन्द्रिय आदि होना दुर्लभ है, संज्ञी पंचेन्द्रियपना उससे भी दुर्लभ है; उसमें पर्याप्ति पूर्ा होना कठिन है; अनेक जीव जन्म लेने से पूर्व गर्भ में ही मर जाते हैं। पर्याप्ति मिले, मनुष्यपना प्राप्त हो, अच्छा कुल और अच्छा क्षेत्र मिले-यह सब भी दुर्लभ है। जैनधर्म मिलना, ज्ञानी सत्पुरुष का संग मिलना दुर्लभ है, व्यसनों से बचना दुर्लभ तथा शुद्धात्मा का उपदेश मिलना-यह सब भी उत्तरोत्तर दुर्लभ है।-दुर्लभ होने पर भी इतना तो जीव पहले प्राप्त

कर चुका है; बाह्य संयोग सब पुण्य के फल से मिलता है। इसलिये उसकी या पुण्य की अपूर्वता नहीं है। इतना सब कुछ मिलने पर भी अंतर में शुद्ध आत्मा की अनुभूति सहित सम्यग्दर्शन प्रगट करना, वह अपूर्व दुर्लभ है और उसी से मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती है। सम्यग्दर्शन की अपेक्षा सम्यक् चारित्र की दुर्लभता है; परंतु शुद्धात्मा को उपादेय करने से उस अपूर्व की भी प्राप्ति होती है। इसलिये शुद्धात्मस्वरूप को ही उपादेय करना, वह तात्पर्य है।

शुद्धात्मा को जाननेवाला भेदज्ञानी धर्मात्मा शरीर के किन्हीं धर्मों को आत्मा के साथ नहीं जोड़ता, वह तो अपने को शरीर से भिन्न ज्ञानस्वरूप ही जानता है। गोरा या काला मैं नहीं हूँ, मोटा या पतला मैं नहीं हूँ, स्त्री या पुरुषादि मैं नहीं हूँ, मनुष्य-देवादि मैं नहीं हूँ, कर्म या कर्म का फल तथा जिससे कर्मबंध हुआ, वह विकारभाव भी मैं नहीं; मैं तो ज्ञानमय अमूर्त हूँ। —ऐसे आत्मा का जो भावश्रुतज्ञानपूर्वक संवेदन करे, वही ज्ञानी है; और वह संवेदनज्ञान राग रहित है। ऐसा वीतरागी स्वसंवेदन ज्ञान सम्यग्दृष्टि को होता है।

सम्यग्दृष्टि को श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र की जितनी निर्मल परिणति हुई है, उतनी तो वीतराग परिणति है।

जो निर्मल परिणति हुई, उसमें राग की एकमेकता नहीं है, उसमें से राग का बोझ उतर गया है। वह देहादि से अपने को अत्यंत भिन्न जानता है और ज्ञान-आनंद के साथ एकमेकता का अनुभव करता है। अज्ञानी तो, शरीर ही मैं हूँ, इसप्रकार एकाकाररूप अनुभव करता है। भाई! आत्मा सदैव उपयोगस्वरूप है, वह जड़रूप कहाँ से होगा? जहाँ शरीर ही आत्मा से अत्यंत भिन्न है, वहाँ शरीर सम्बन्धी कोई वेश आत्मा का कहा से हो सकता है? इसलिये बाहरी द्रव्यलिंग से तो आत्मा बिल्कुल भिन्न ही है। आत्मा में बाह्य द्रव्यलिंग किंचित् भी नहीं है। और अंतर में मोक्षमार्गरूप वीतराग निर्विकल्प समाधि है, उस शुद्ध पर्याय को आत्मा कहना, वह भी अंश में पूर्ण का आरोप होने से व्यवहार है; अखंड शुद्ध आत्मा को ही उपादेयरूप करना, सो निश्चय है। उस शुद्धात्मा को उपादेय करके उसमें एकाग्र होने से मोक्षपर्याय प्रगट होती है। मोक्षमार्ग पर्याय इसकी साधक है परंतु पूर्ण-शुद्धात्मा साधक पर्याय जितना ही नहीं है; इसलिये उस साधकपर्याय को जीव कहना, उसे भी उपचार कहा है। वहाँ विकार और परद्रव्य की बात तो कहीं दूर रह गई। ऐसे शुद्धात्मा को प्रतीति में-ज्ञान में अनुभव में ले, तभी मोक्षमार्ग और मोक्षदशा प्रगट होती है। साधक पर्याय तो स्वभाव का अंश है, विकार या शरीर तो स्वभाव का

अंश भी नहीं है, उसे जीव कहना तो असद्भूत है; और शुद्धपर्याय को जीव कहना, वह भी अंश में पूर्णता का उपचार होने से व्यवहार है। शुद्ध पर्याय का भेद किये बिना शुद्धस्वभाव को अखंड प्रतीति में लेकर उसी को उपादेय करना, यही परमार्थ तात्पर्य है।

'सत्' उत्पादव्यय ध्रुवता सहित है। इसलिये पूर्व के उत्पाद में से नवीन उत्पाद नहीं आता, परंतु प्रति समय द्रव्य स्वयं ही उत्पादरूप से उत्पन्न होता है; उस उत्पाद का कारण दूसरा कोई नहीं। साधक पर्याय स्वयं साध्यरूप नहीं होती, साध्यरूप तो द्रव्य स्वयं परिणमित होता है; इसलिये एक साधक पर्याय को आत्मा कहना, वह उपचार है-व्यवहार है। जिसप्रकार आम का वृक्ष ही आम का दाता है, उसमें से नये-नये आम आते रहते हैं; परंतु छोटे आम में से बड़ा आम नहीं आता, अथवा एक आम में से दूसरा आम नहीं आता; उसीप्रकार पूर्णद्रव्य वह निर्मल पर्यायों का वृक्ष है, उसमें से नई-नई निर्मल पर्याय आती रहती है परंतु पहले की छोटी पर्याय (साधकभाव) में से बड़ी पर्याय (साध्यपर्याय) नहीं आती, अथवा एक पर्याय में से दूसरी पर्याय नहीं आती। इसलिये पर्याय सन्मुख दृष्टि न रखकर पूर्ण द्रव्य को दृष्टि में लेना चाहिये, उसी को श्रद्धा-ज्ञान में उपादेय करके उसमें एकाग्रता करना चाहिये; उसमें एकाग्र होने से साध्य पर्याय खिल जाती है। शुद्ध जीवतत्त्व त्रिकाल है, उसके आश्रय में संवर-निर्जरा नये प्रगट होते हैं। त्रैकालिक द्रव्य एवं निर्मल पर्याय - इसप्रकार वस्तु है। उसमें से निर्मल पर्याय का भेद करके उसे जीव कहना, सो व्यवहार है; और शुद्ध चैतन्य द्रव्य को जीव कहना, वह निश्चय है। उस शुद्धद्रव्य को दृष्टि में लेकर उसमें पर्याय की लीनता करने से संवर-निर्जरा -मोक्ष पर्याय खिल जाती है; इसलिये निर्मल पर्याय का परमार्थ साधन शुद्ध द्रव्य ही है-यह परमार्थ है और पूर्व की निर्मल पर्याय को साधन कहना, सो व्यवहार है। परमार्थ साधनरूप शुद्ध वस्तु के सन्मुख होकर परिणति उसमें लीन हुई, वहाँ साध्य-साधक दोनों एक होकर परिणमित हुए, उसके बीच भेद न रहा। वहाँ बाह्य में अन्य किसी साधन को ढूँढ़ना नहीं रहा।—ऐसी दशा हो, तब आत्मा को साधा कहा जाता है। इसके बिना अन्य रीति से आत्मा सिद्ध नहीं होता-स्वानुभव में नहीं आता।

# सम्यग्दृष्टि की अंदर की दशा का वर्णन

## सविकल्प हो या निर्विकल्प-दोनों ही दशाओं में सम्यक्त्व एक-सरीखा है

''धर्मात्मा जहाँ शुभ-अशुभरूप परिणत हो, वहाँ उसके सम्यक्त्व का अस्तित्व किस तरह होगा! इसी बात को यहाँ दृष्टांतपूर्वक समझाते हैं; जैसे कोई मुनीम किसी सेठ का कार्य करता है, उस कार्य को अपना कार्य भी कहता है, हर्ष-विषाद को भी प्राप्त होता है, इस कार्य को करते हुए वह अपनी और सेठ की परस्पर की भिन्नता भी नहीं समझता, परंतु उसे अंतरंग में ऐसा श्रद्धान है कि 'यह कार्य मेरा नहीं है।' इस तरह कार्य करनेवाला वह मुनीम 'साहूकार' है; लेकिन वह सेठ के धन की चोरी को अपना माने तो वह मुनीम चोर ही कहा जायेगा; वैसे ही कर्मोदयजनित शुभाशुभ कार्य का कर्ता होकर तद्रूप परिणमन भी करता हो, तो भी उस सम्यग्दृष्टि को इसप्रकार का अंतरंग श्रद्धान है कि 'यह कार्य मेरा नहीं है।' लेकिन यदि देहाश्रित व्रत-संयम को भी वह अपना मानता है, तो वह मिथ्यादृष्टि है। इसतरह सविकल्प परिणाम होता है।''

शुभाशुभ परिणाम के समय भी धर्मी को शुद्धातमश्रद्धानरूप निश्चयसम्यक्त्व होता है, यह बात यहाँ दृष्टांत देकर समझायी है। सविकल्पना और निर्विकल्पना तो उपयोग की अपेक्षा से है, श्रद्धा में सविकल्प और निर्विकल्प-ऐसा कोई भेद नहीं है। सविकल्पदशा चाहे अशुभरागरूप हो या शुभरागरूप हो, सम्यक्त्व तो इन दोनों से परे शुद्धात्मा के श्रद्धानरूप रहता है। उस सम्यग्दृष्टि का उपयोग चाहे स्वानुभव में हो या बाहर शुभ-अशुभ में हो, परंतु दोनों समय उसे सम्यग्दर्शन तो एक ही तरह का रहता है। इससे ऐसा नहीं समझ लेना कि सम्यक्त्वी अपने उपयोग को चाहे-जिसरूप में बाहर घुमाता रहता होगा। स्वानुभव में जिस आनंद का स्वाद चखा है, उसमें बार-बार उपयोग जोड़ने (लगाने) की भावना उसे रहती ही है, उसके लिये बार-बार प्रयत्न भी करता है; क्योंकि, श्रद्धा के वैसे-के-वैसे रहते हुए भी स्वानुभव में उपयोग के समय निर्विकल्पदशा में अतीन्द्रिय आनंद का जो विशेष वेदन होता है, वैसा विशेष वेदन सविकल्पदशा में नहीं होता। लेकिन ऐसी निर्विकल्पदशा जब स्थिर नहीं रहती, तब

सम्यक्त्वी (धर्मी) का शुभ या अशुभ में भी उपयोग चला जाता है। जब अशुभ में उपयोग चला जाता है, तब सम्यक्त्व कोई मैला नहीं हो जाता है। इन्द्रिय तरफ लगनेवाले उपयोग में सम्यक्त्व भिन्न है और अतीन्द्रिय उपयोग में लगनेवाला सम्यक्त्व अन्य; इस तरह सम्यग्दर्शन में कोई दो भेद नहीं हैं। प्रत्यक्ष-परोक्ष ऐसा भेद भी उपयोग में है, सम्यग्दर्शन में कोई प्रत्यक्ष-परोक्षपना का भेद नहीं है; सम्यग्दर्शन तो निरंतर शुद्ध आत्मा का श्रद्धानरूप ही है।

शुभ-अशुभ के समय भी इस श्रद्धान की अखंडता समझाने के लिये यहाँ साहूकार, अर्थात् प्रामाणिक मुनीम का दृष्टांत दिया है। जिसप्रकार प्रामाणिक मुनीम अपने सेठ के सभी कार्य मानों अपने ही हैं, इस तरह करता है, व्यापार में लाभ-हानि होने पर उसमें हर्ष-खेद करता है, यह हमारी दुकान है, यह हमारा माल है, ऐसा कहता है; इस तरह सेठ के कार्यों में परिणाम लगाते हुए भी वह अपने अंतरंग में समझता है कि इसमें मेरा कुछ नहीं है, ये सब दूसरे का (सेठ का) है। उस तरह धर्मात्मा जीव भी राग की भूमिका-अनुसार विषय-कषाय-क्रोध-मान-व्यापार-धन्धा-रसोई आदि अशुभप्रवृत्ति में या पूजा-भक्ति-दया-दान-यात्रा-स्वाध्याय-साधर्मी प्रेम आदि शुभप्रवृत्ति में उपयोग को लगाता है। तथापि उपर्युक्त मुनीम की तरह वह समझता है कि ये देहादि के कार्य या ये रागादि के भाव वास्तव में मेरे नहीं हैं, मेरे स्वरूप की यह चीज़ नहीं है। उस रागादि के कार्य या रागादि के भाव वास्तव में मेरे नहीं है, मेरे स्वरूप की यह चीज़ नहीं है। उस रागादि के समय उसमें तद्रूप से आत्मा परिणत हुआ है, अर्थात् आत्मा की ही वह पर्याय है, परंतु स्वयं शुद्धस्वभाव रागरूप नहीं हो गया है। यदि ऐसा शुद्धात्मा का श्रद्धान नहीं रखे और रागादि को या देहादि की क्रिया को वास्तव में अपना स्वरूप माने तो वह जीव मिथ्यादृष्टि है। जिसतरह मुनीम आदि सेठ की वस्तु को वास्तव में अपनी ही समझकर अपने घर ले जाये तो वह प्रामाणिक नहीं कहा जायेगा, बल्कि चोर कहा कहा जायेगा; उसी तरह जो दूसरे की है, ऐसी देहादि क्रिया को या दूसरे के ऐसे रागादि भावों को सचमुच अपना ही समझकर जो उन्हें अपना स्वरूप ही समझ ले वह जीव मिथ्यादृष्टि है। 'यह मेरा नहीं है, यह सेठ का है' ऐसा मुनीम को कोई हमेशा रटना नहीं पड़ता, हर एक कार्य के समय इसे यह प्रतीति मन में रहती ही है, ठीक उसी तरह 'यह शरीर मेरा नहीं है, यह राग मेरा नहीं है, मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा धर्मी को कोई हमेशा रटना नहीं पड़ता, हर एक क्षण-शुभाशुभ परिणामों के समय भी इसे समस्त परद्रव्य और समस्त परभावों से भिन्न शुद्धात्मा की जो प्रतीति हुई है, वह बराबर रहती ही है।

देखो, सम्यग्दृष्टि की यह अंदर की दशा! सम्यक्त्व की कैसी सरस चर्चा करी है! अहा, धन्य है उन साधर्मीजनों को कि जो ऐसी स्वानुभव की चर्चा करते हैं। स्व-पर का यथार्थ भेदज्ञान कहो, तत्त्वार्थश्रद्धान कहो, भूतार्थ का आश्रय कहो, शुद्धनय कहो या शुद्धात्मश्रद्धान कहो, वह निश्चय सम्यक्त्व है। ऐसी दशा के बिना-प्रकट हुए जीव, भले ही जैनधर्म के ही देव-गुरु-शास्त्र को मानता हो और अन्य कुदेवादि को न मानता हो, तो भी उसे सम्यक्त्वी या धर्मी नहीं कहते; इसलिये स्व-पर के यथार्थ भेदज्ञानपूर्वक तत्त्वार्थश्रद्धान करके स्वानुभव सहित शुद्धात्मश्रद्धान करना, वही सम्यक्त्व है, वही मोक्षमार्ग का पहला रत्न है, और वही पहला धर्म है। प्रसन्न होकर आत्मा की प्रीतिपूर्वक ऐसी सम्यक्त्वादि की बात जो उत्साहपूर्वक सुनता है, वह भी महान भाग्यशाली है, उसमें ऊँची जाति का पुण्य बँध जाता है; और इस बात को समझकर यदि उसे अंतर में परिणत करता है, वह तो अपूर्व कल्याण को प्राप्त करता है और नियम से अल्पकाल में मोक्ष जाता है। ऐसे अध्यात्म के रसीले जीव हमेशा विरले ही होते हैं।

जगत को तो सम्यग्दृष्टि के स्वरूप की पहिचान भी दुर्लभ है। सम्यग्दृष्टि के शुद्धात्मा को प्रतीति में लेकर अपना प्रयोजन सिद्ध किया है; मतिश्रुतज्ञान को आत्मज्ञान द्वारा सम्यक् किया है, इसका मतलब यह हुआ कि वह जो कुछ भी जानता है, वह सब सम्यग्ज्ञान ही है। उसका ज्ञान पदार्थों को विपरीतरूप से सिद्ध नहीं करता। अपना मोक्षमार्ग सिद्ध करने का जो प्रयोजन है, वह अन्य प्रकार से नहीं होता। अहो, जहाँ आत्मा संबंधी ज्ञान में भूल नहीं है, वहाँ बाहर के जानपने की कोई भूल मोक्षमार्ग के सिद्ध करने में बाधक नहीं हैं। आत्मा को जानते ही सभी ज्ञान सम्यक् हो गया। मिथ्यादृष्टि को बाहर का कुछ-एक (थोड़ा-सा) जानपना भले ही हो परंतु उसका यह बाह्यज्ञान मोक्षमार्गरूप निजप्रयोजन को सिद्ध नहीं करता, इसलिये उसे मिथ्याज्ञान ही कहते हैं। इसतरह ज्ञान में 'सम्यक्' और 'मिथ्या' ऐसे दो प्रकार निज प्रयोजन को सिद्ध करने-न सिद्ध करने की अपेक्षा से समझना चाहिये। देखो, इस ज्ञान का प्रयोजन। बिना शुद्धात्मारूप प्रयोजन के सारा ही जानपना निकम्मा है, मोक्षमार्ग में उसकी कोई गिनती (महत्व) नहीं है।

पुनः ऐसा कहा कि, सम्यक्पन की अपेक्षा से केवलज्ञान और मति-श्रुतज्ञान की जाति एक है। मतिश्रुतज्ञान को केवलज्ञान का अंश कहा है। सम्यग्दृष्टि के वह ज्ञान बढ़ता-बढ़ता केवलज्ञान हो जाता है। मिथ्याज्ञान पलटकर यथार्थ तत्त्वश्रद्धान-सहित जो सम्यग्ज्ञान हुआ, उसकी अचिंत्य महिमा है, वह ज्ञान मोक्ष को सिद्ध करता है।

अब सम्यग्दृष्टि के जब ऐसा मति-श्रुतज्ञान स्वानुभव में प्रवर्तित होता है, तब तो निर्विकल्पता होती है, और जब बाहर के शुभाशुभ कार्यों में प्रवर्तित होता है, उस समय सविकल्पता होती है। परंतु चाहे सविकल्पता हो या निर्विकल्पता-सम्यग्दर्शन तो दोनों समय (दशा में) ऐसा का ऐसा ही रहता है। कुछ ऐसा नहीं है कि निर्विकल्पता के समय सम्यग्दर्शन सारा का-सारा निर्मल हो जाता हो और सविकल्पता के समय मलिन हो जाता हो। किसी को सविकल्पता होने पर भी क्षायिक सम्यक्त्व रहता हो, किसी के निर्विकल्पता होने पर भी क्षायोपशमिक रहता हो। इसका मतलब हुआ कि सम्यक्त्व की निर्मलता का या निश्चय-व्यवहार का नाप सविकल्पता-निर्विकल्पता के ऊपर से नहीं होता। हाँ, इसमें इतना नियम ठीक है कि सम्यक्त्व की उत्पत्ति के समय निर्विकल्प अनुभूति होती ही है, और मिथ्यादृष्टि के तो निर्विकल्प अनुभूति कभी हो ही नहीं सकती। परंतु सम्यग्दृष्टि के निर्विकल्प उपयोग सदा ही बना रहे, ऐसा इन दोनों (सम्यग्दर्शन और निर्विकल्प उपयोग) का हमेशा का अविनाभावीपना नहीं है।

यहाँ यह प्रश्न समझाते हैं कि जिससमय शुभ-अशुभ में उपयोग रहता हो, उस समय सम्यग्दर्शन का अस्तित्व कैसे रहता है ? भाईजी ! सम्यक्त्व कोई उपयोग नहीं है, वह तो प्रतीति है। शुभाशुभ में उपयोग रहते भी शुद्ध आत्मा का अंतरंग-श्रद्धान तो धर्मी को ऐसा-का-ऐसा ही रहता है; स्व-पर का जो भेदविज्ञान हुआ है, वह तो उस समय भी रह ही रहा है। 'यह शुभ-अशुभ मेरा स्वभाव नहीं है, मैं तो शुद्धचैतन्यस्वभाव ही हूँ'—ऐसा निश्चय अंतरंग श्रद्धा धर्मी को शुभ-अशुभ के समय भी कहीं चली जाती नहीं है। जिस तरह मुनीम सेठ के कार्यों में प्रवृत्ति करता है, लाभ-हानि होने से हर्ष-विषाद को भी प्राप्त होता है, फिर भी मन में यह भान है कि इस लाभ-हानि का स्वामी मैं नहीं हूँ। यदि वह सेठ की सम्पत्ति को सचमुच अपनी ही माने ले तो वह चोर कहलायेगा। उसी तरह धर्मात्मा का उपयोग शुभ-अशुभ में भी जाता है, शुभ-अशुभरूप परिणति होता है, फिर भी अंतर में उसी वक्त उसे श्रद्धान है कि यह कार्य मेरा नहीं है, उसका स्वामी मैं नहीं हूँ, शुद्धोपयोग के समय जैसी प्रतीति बनी हुई थी, अशुभ उपयोग के समय भी वैसी ही प्रतीति शुद्धात्मा की रहती है। मतलब यह है कि उसे शुभ-अशुभ के समय भी सम्यक्त्व में बाधा नहीं आती। यदि परभावों को अपना माने या देहादि परद्रव्य की क्रिया को अपना माने-तो तत्त्वश्रद्धान में विपरीतता, अर्थात् मिथ्यात्व हो जाये।

एक बात और। 'निर्विकल्पता के समय निश्चय सम्यक्त्व होता है और सविकल्पता के समय व्यवहारसम्यक्त्व'—ऐसी भी बात नहीं है। चौथे गुणस्थान में मिथ्यात्व को नष्ट कर निर्विकल्प स्वानुभूतिपूर्वक शुद्धात्मप्रतीतिरूप जो सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है, वह निश्चयसम्यग्दर्शन है; और यह निश्चयसम्यग्दर्शन सविकल्प या निर्विकल्प दोनों ही दशाओं में एक-सरीखा ही रहता है। स्वानुभव के समय तो निर्विकल्पता होती है। सम्यग्दृष्टि को जिस समय सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, उस समय तो स्वानुभव और निर्विकल्पता हुई, परंतु वह सम्यग्दृष्टि निर्विकल्प-स्वानुभव में हमेशा नहीं रह सकता है, निर्विकल्पदशा बहुत लंबे समय तक नहीं रह सकती है; पीछे सविकल्पदशा में आने पर शुभ या अशुभ में उपयोग लग जाता है। और शुद्धात्मा की प्रतीति तो उस समय भी चालू ही रहती है।—ऐसी सम्यक्त्वी महात्मा की स्थिति है। अपने शुद्ध आत्मभाव के सिवाय वह किसी दूसरे के स्वामित्वरूप से कभी परिणत नहीं होता।

धर्मी को शुभभाव के समय भी सम्यक्त्व होता है—ऐसा कहा, उससे ऐसा नहीं समझा जाये कि उस शुभभाव के करते-रहने से सम्यक्त्व हो जायेगा। यदि उस शुभभाव को स्वभाव की चीज़ मानकर उसका स्वामित्व करे, अथवा उस शुभभाव को सम्यक्त्व का कारण माने तो उस जीव को शुभ के साथ सम्यक्त्व नहीं होता, लेकिन शुभ के साथ मिथ्यात्व होता है। शुभ के समय जिसे शुभ से रहित ऐसे शुद्धात्मा की श्रद्धा रहती है, वही सम्यग्दृष्टि है।

सम्यग्दर्शन होने के बाद यदि शुभ-अशुभ परिणाम बिल्कुल ही न हो तो तुरंत ही वीतरागता और केवलज्ञान हो जाये। लेकिन सभी को ऐसा नहीं होता है। सम्यग्दर्शन हो जाने के बाद भी जबतक अपने स्वरूप में पूर्ण लीनता नहीं होगी, तबतक अपने चारित्र की कमजोरी के कारण धर्मी के शुभ-अशुभभावरूप परिणमन होता है। धर्मी इसे अपना स्वभाव नहीं मानता, उसी तरह 'कर्म ने यह सब कराया होगा' ऐसा भी नहीं मानता है, अपने गुण का परिणमन ही इतना कमती है, अर्थात् वह उसे अपनी ही परिणति का अपराध समझता है। इस तरह सम्यक् प्रतीतिरूप सम्यग्दर्शन उसे रहता है।

इसतरह सम्यग्दृष्टि की सविकल्पदशा बताकर और उस सविकल्पदशा में भी सम्यक्त्व होता है-यह बात समझाई है। अब वह सम्यग्दृष्टि सविकल्पता में से फिर से निर्विकल्प किस तरह हो जाता है—यह बात बताते हैं।

—'पंडित टोडरमलजी की रहस्यपूर्ण चिट्ठी' के ऊपर प्रवचनों में से

# अनुभव में प्रगट होनेवाली ज्ञानज्योति

शुद्ध चैतन्यवस्तु स्वानुभव में प्रकाशित हाती है, वह शुद्धनय के आधीन है। शुद्धवस्तु राग के आधीन नहीं है, वस्तु विकल्प के आधीन नहीं है, वस्तु वचन के आधीन भी नहीं है; वस्तु तो शुद्धनय के आधीन है।

[कलश टीका प्रवचन]

निर्विकल्प-शुद्धनय द्वारा शुद्ध आत्मा की अनुभूति हुई, वह कैसी अनुभूति है ? उसमें नौ संख्या का विकल्प नहीं है, नौ तत्त्वों के विकल्पों से परे शुद्ध चैतन्यज्योति एकरूप से प्रकाशित होती है। समयसार की १३वीं गाथा में भूतार्थनय से होनेवाले सम्यग्दर्शन का वर्णन है; उसके उपोद्घातरूप से यह सातवाँ श्लोक है—

अतः शुद्धनयायत्तं प्रत्यग्ज्योतिश्चकास्ति तत्।
नवतत्त्वगतत्वेऽपि यदेकत्वं न मुंचति॥७॥

जिस वस्तु के अनुभव से सम्यक्त्व हुआ, उस वस्तु का यह वर्णन है। शुद्धनय का अर्थ है वस्तु में अभेदरूप से हुआ ज्ञान; वह ज्ञान शुद्ध वस्तुमात्र है; और उसी के आधीन वस्तु का अनुभव है। वस्तु राग के आधीन नहीं है, वस्तु विकल्प के आधीन नहीं है, वस्तु वचन के आधीन नहीं है, वस्तु तो अपने स्वभाव के ही आधीन है। उसका अनुभव उसी के आश्रय से होता है। अनुभव में सम्यक्त्वी के केवल शुद्धात्मा प्रकाशित होता है।

कोई कह सकता है कि आत्मा संसार से छूटकर जिससमय सिद्ध होता है, उसी समय उसे शुद्ध वस्तु कहा जा सकता है, तो कहते हैं कि द्रव्यदृष्टि से विचार करने पर जीववस्तु त्रिकाल शुद्ध है। पर्याय में जो रागादि है, उसे तो वास्तव में वस्तु कहते ही नहीं। वस्तु तो अपने ज्ञायक रस का पिण्ड है। उसके अनुभव से अभी भी सम्यक्त्व होता है। पर्याय की अशुद्धता के अनुभव से सम्यक्त्व नहीं होता।

**प्रश्न**—अनुभव करने का क्या मतलब हुआ ?

**उत्तर**—स्वभाव का अनुसरण करके-उसमें तन्मय होकर 'होना', अर्थात् 'परिणमना'—यह अनुभव है। शुद्धस्वभाव जैसा है, उसका अनुसरण करके पर्याय का भी वैसा

ही शुद्ध हो जाना—इसप्रकार द्रव्य-पर्याय दोनों एक जाति के होकर के उनका एकाकार-अभेदरूप से परिणत होना ही 'अनुभव' है। इस अनुभव के बीच में न राग है, न विकल्प है। ऐसे अनुभव से आत्मवस्तु संवर-निर्जरा-मोक्षपर्यायरूप से परिणत होती है, उन पर्यायों में भी अभेदरूप से शुद्धात्मा एकरूप से प्रकाशमान है। ऐसी शुद्ध आत्मा की अनुभूति ही मोक्षमार्ग है।

पर्याय में नौ तत्त्वों के भेद होते हुए भी, अर्थात् पर्याय में भूमिकानुसार नौ तत्त्वरूप परिणमन होते हुए भी, सम्यग्दृष्टि के अनुभति में एकरूप शुद्धात्मा ही प्रकाशमान है। अनुभूति में कोई नौ भेद नहीं हैं। अनुभूति में तो एकरूप शुद्ध सत्ता की धारा ही बही चली जाती है। पर्याय में जो नौ भेद हैं, वह बराबर हैं, लेकिन जिस समय निर्विकल्प अनुभूति से शुद्ध वस्तु का अनुभव करते हैं, उस समय वह नौ भेद का विकल्प नहीं है, शुद्धजीववस्तु चेतनाभावरूप से ही प्रकाशित होती है।

जिसप्रकार अग्नि का दाहक स्वभाव है, लकड़ी-तृण-कण्डा वगैरह को वह जलाती है; वहाँ उस-उस दाह्य के (कण्डा वगैरह के) आकार अग्नि हो जाती है, उस अपेक्षा से उसमें यह लकड़ी की अग्नि, कण्डा की अग्नि वगैरह भेद सच्चा है, लेकिन जब अग्नि के उष्णत्व स्वभाव को देखते हैं तो वह एकरूप उष्णता मात्र ही मालूम पड़ती है, उसमें समस्त भेद झूठा है। उसीप्रकार चैतन्य-ज्योति आत्मा है-जिसके साधकदशा के कोई परिणाम शुद्ध, कोई अशुद्ध होते हैं। इस तरह उसकी पर्याय मैं नौ तत्त्व के भेद हैं, वे ठीक हैं, लेकिन शुद्ध एकाकार जीववस्तु को देखने पर वह चेतनामात्र ही मालूम पड़ती है; चेतनामात्र शुद्ध वस्तु के अनुभव करते हुए नौ तत्त्व का विकल्प झूठा है-असत् है-अविद्यमान है।

व्यवहार को झूठा बतलाते वक्त कई लोग भड़क उठते हैं; लेकिन ४०० वर्ष पहिले हुए श्री पंडित राजमलजी जो कि जिनधर्म के मर्मज्ञ थे-कहते हैं कि शुद्ध जीववस्तु का अनुभव करते समय नौ तत्त्व का विकल्परूप व्यवहार झूठा है और ऐसा अनुभव करने से ही सम्यक्त्व होता है।

इस सम्यक्त्व की रीति को तो देखो! पर्याय में नवतत्त्व का विचाररूप व्यवहार वह सत्य और इस शुद्धवस्तु की अनुभूति में जो व्यवहार वह असत्य; इस नवतत्त्व के व्यवहार में ही जिनकी भूल होती है, उन्हें तो पर्याय का ज्ञान ही नहीं है, उनका तो व्यवहार भी खोटा है।

**प्रश्न**—अनुभव में ही व्यवहार को झूठा तो कहा ही है ?

उत्तर—अनुभूति में व्यवहार को झूठा कहा है, लेकिन उसमें उसकी (व्यवहार की) कोई विपरीतता नहीं है; नौ तत्त्वों को वे जैसे हैं, वैसा उन्हें जानकर पीछे अनुभव के समय इनका विकल्प छूट जाने से व्यवहार को वहाँ झूठा (असत्-अविद्यमान) कहा है; और अज्ञानी के तो नौ तत्त्वों के निर्णय में ही भूल है, इसलिये उसके व्यवहार को विपरीतपने की अपेक्षा से खोटा कहा है; व्यवहार में जिसके विपरीतता है, उसके तो निर्णय ही खोटा हुआ, ज्ञान खोटा है, श्रद्धा खोटी है, उसे शुद्ध वस्तु का अनुभव नहीं होता। यहाँ तो नवतत्त्व को जानकर व्यवहार की विपरीतता जिसने दूर करी है, उसके उपरान्त शुद्धवस्तु के अनुभव द्वारा जिसने नवतत्त्व का विकल्प भी छोड़ा है—ऐसा जीव अपूर्व सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है, इसका वर्णन है।

नौ तत्त्वों के विकल्प से परे शुद्ध जीववस्तु का अनुभव करने से ही सम्यग्दर्शन होता है, इसलिये नौ तत्त्वों के विकल्प से परे और अंतरंग में हमेशा शुद्धरूप से प्रकाशमान शुद्ध आत्मज्योति को तुम लोग देखो, अर्थात् अत्यंत अनुभव में लो-ऐसा संतों का उपदेश है।

## कल्याण की मूर्ति—सम्यग्दर्शन

हे जीवो! यदि तुम लोग आत्मकल्याण चाहते हो तो स्वतःसिद्ध और समस्त प्रकार से परिपूर्ण आत्मस्वभाव की रुचि का ही लक्ष और आश्रय करो। इसके सिवाय दूसरा जो कुछ है, उस सबकी रुचि, लक्ष और आश्रय छोड़ो। क्योंकि सुख स्वाधीन स्वभाव में है, परद्रव्य तुम्हें सुख या दुःख देने में समर्थ नहीं है। तुम अपने स्वाधीन स्वभाव का आश्रय छोड़कर अपने दोष से ही पराश्रय द्वारा अनादि से अपना अकल्याण कर रहे हो। इसलिये अब सब परद्रव्यों का लक्ष और आश्रय छोड़कर स्वद्रव्य का ज्ञान, श्रद्धान तथा स्थिरता करो। स्वतत्त्व में दो भेद हैं—एक तो त्रिकाल शुद्ध स्वतः परिपूर्ण निरपेक्ष स्वभाव, और दूसरा वर्तमान में होनेवाली हालत; पर्याय के लक्ष से पूर्णता की प्रतीतिरूप सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं होता है, लेकिन जो त्रिकाली स्वभाव है वह सदा शुद्ध है; परिपूर्ण है और वर्तमान में भी वह प्रकाशमान है। अतः उसके आश्रय से पूर्णता की प्रतीतिरूप सम्यग्दर्शन प्रगट होगा। यह सम्यग्दर्शन स्वयं कल्याणस्वरूप है और वही सर्वकल्याण का मूल है। ज्ञानीजन सम्यग्दर्शन को 'कल्याण की मूर्ति' कहते हैं। इसलिये हे जीवो! तुम लोग सबसे पहिले सम्यग्दर्शन प्रकट करने का अभ्यास करो।

# जीवन का कर्तव्य

अध्यात्मतत्त्व की बात समझने के लिये तैयार होनेवाले जिज्ञासु को वैराग्य और कषाय की मंदता तो होती ही है। जिसे कषाय की मंदता और वैराग्य होता है, उसे ही आत्मस्वरूप समझने की जिज्ञासा जागृत होती है। मंद कषाय होने की बात तो सभी करते हैं, लेकिन सर्व कषायों से रहित अपने आत्मतत्त्व के स्वरूप को समझकर जन्म-मरण के अंत की निःशंकता आ जाये, यह बात तो इस जैनधर्म में ही है। अनंत काल पश्चात् तत्त्व समझने का अवसर आया, देह कब छूट जायेगी, इसका कोई भरोसा नहीं, ऐसे समय यदि कषाय को हटाकर आत्मस्वरूप नहीं समझे तो फिर कब समझेगा? पुरुषार्थसिद्धियुपाय में तो कहा है कि जिज्ञासु जीव को पहिले सम्यग्दर्शनपूर्वक मुनिपने का उपदेश देना चाहिये; यहाँ तो अभी पहिले सम्यग्दर्शन प्रकट करने की ही बात है। हे भाई, मानव जीवन की देहस्थिति पूरी होने पर यदि तू स्वभाव की रुचि और परिणति साथ न ले जाये तो तूने अपने जीवन में कोई आत्मा का कार्य नहीं किया। देह छोड़कर जानेवाले जीव के साथ क्या आयेगा? यदि जीवन में तत्त्व समझने की परवाह करी होगी तो ममतारहित स्वरूप की रुचि और परिणति साथ ले जायेगा; और यदि वह परवाह नहीं करी हो तथा पर के ममत्व करने में ही जीवन गाला हो तो उसके साथ ममताभाव की आकुलता के सिवाय दूसरी कोई वस्तु जानी नहीं है। किसी भी जीव के साथ पर-वस्तुएँ साथ नहीं जातीं मात्र, अपने भाव को ही यह जीव साथ ले जाता है।

अतः यहाँ आचार्यदेव कहते हैं कि चेतना द्वारा आत्मा का ग्रहण करना। जिसने चेतना द्वारा आत्मा का ग्रहण किया है, वह सदा आत्मा में ही है। जिसने चेतना द्वारा शुद्ध आत्मा को जान लिया है, वह कभी परपदार्थ को या परभावों को आत्मा के स्वभाव तरीके ग्रहण नहीं करता है, पर शुद्धात्मा को ही अपने रूप से जानकर उसी का ग्रहण करता है, इसका मतलब हुआ कि वह हमेशा अपने आत्मा में ही है। यदि कोई पूछे कि कुन्दकुन्द प्रभु कहाँ हैं? तो ज्ञानी का उत्तर है कि वास्तव में कुन्दकुन्द प्रभु स्वर्गादि बाह्य क्षेत्रों में नहीं हैं किन्तु अपनी निर्मल आत्मा में ही हैं। जिनने कभी किन्हीं परपदार्थों को अपना माना नहीं और एक चेतना स्वभाव

को ही अपने रूप से अंगीकार किया है, वह चेतना सिवाय दूसरी कौन सी जगह जाये ? जिसने चेतना द्वारा आत्मा का ग्रहण किया है, वह हमेशा अपनी आत्मा में स्थिर रहता है। जिसमें जिसकी दृष्टि पड़ी हुई है, वह उसी में ही कायम रहे हुए हैं। वास्तव में अपनी चैतन्यभूमिका से बाहर कोई जीव नहीं रहता। अपनी चैतन्यभूमिका में जैसा भाव करता है, वैसे भाव में वह रहता है; ज्ञानी ज्ञानभाव में रहता है और अज्ञानी अज्ञानभाव में। बाह्य में चाहे-जो क्षेत्र हो, पर जीव अपनी चैतन्यभूमिका में जो भी भाव करता है, उसी भाव को वह भोगता है, बाहर के संयोग को नहीं भोगता। ऐसा समझकर निजभाव में रहना ही जीवन का कर्तव्य है।

[ श्री समयसार, गाथा २९७ के व्याख्यान में से ]

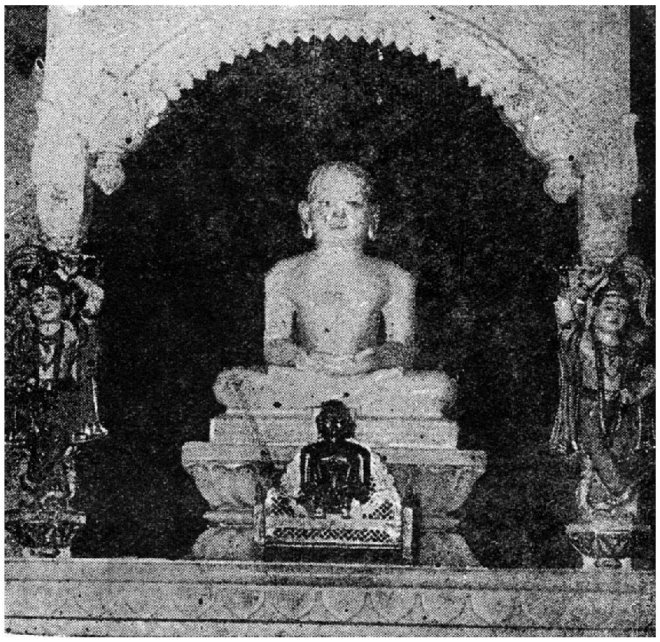

श्री कानजी स्वामी की जन्म-नगरी उमराला में उजमबा
स्वाध्याय भवन स्थित जिनालय की वेदी में
विराजमान भगवान श्री सीमंधर तीर्थकर्ता
जिनेश्वर देव की मनोहर प्रतिमा!

**नमस्कार हो श्री सीमंधरनाथ को!!!**

आत्म-अनुभव से रत्नत्रय की प्राप्ति होती है और इसी से मुक्ति मिलती है। इसप्रकार सत्य मूलभूत स्वरूप समझाकर, आपने जगत पर महान उपकार किया है।

आप श्री जिनेन्द्रदेव के परम भक्त हैं, आपने श्री जिनेन्द्रदेव को हृदय में बसाया है ?

दिन दिन आनंद मंगल में वृद्धि के कारण मंगलमूर्ति! आपका पुनीत प्रताप जयवंत रहो! आपका प्रभाव और चैतन्यऋद्धि की वृद्धि हो! मंगलमय जन्म महोत्सव के अवसर पर श्री गुरुदेव को भक्ति के पुष्पों से बधाते हैं, आनंद-किरण से स्वस्तिक पूर कर-भर कर और हर्षानंद के दीपक प्रगट करते हैं।

# आध्यात्मिक क्रांति

इस समय क्रांति का युग है, जहाँ देखो वहाँ बस, क्रांति... क्रांति और क्रांति! वर्षों के वर्षों से अनेक प्रकार क्रांतियाँ करने पर भी जगत को अभी सुख की झांकी भी तो नहीं दिखती?—उल्टा दु:ख बढ़ता है ऐसा लगता है? तो जिज्ञासु को विचारना रहा कि यह राजकीय क्रांति अथवा औद्योगिक-क्रांति अथवा शैक्षणिक-क्रांति—यह सब क्रांति सिवाय की दूसरी एक क्रांति ही यथार्थ में सुख का कारण है—ऐसी आध्यात्मिक क्रांति ही जगत के जीवों को सुखी कर सकती है। अर्थात् ऐसे आध्यात्मिक-क्रांतिकारी कोई संत को शोधना चाहिये। ऐसे आध्यात्मिक-क्रांतिकारी संत मिलना इस तरह तो बहुत दुर्लभ होता है, वर्षों तक मुश्किल से कोई संत दिखता है, परंतु इस समय बसके सद्भाव से ऐसे क्रांतिकारी संत को खोजने दूर जाना पड़े वैसा नहीं, इस समय भारत में अपने बीच ही ऐसे क्रांतिकारी संत विराज रहे हैं।—**एक संत हैं पूज्य श्री कानजीस्वामी।**

अहो, तीर्थंकरों के और संतों के आत्मिक स्वाधीनता के संदेश ग्रहण कर और कुमार्ग की बेड़ी के बंधन तोड़कर जीवन में उनने जो आत्मिक क्रांति की है, वह बेमिसाल (अजोड़) है... इतना ही नहीं, भारत के जीवों को भी इसी मार्ग पर आने का आह्वान करके आध्यात्म की जो महान क्रांति उनने रची है, वह जैनशासन के सुवर्ण पट पर हीरे के अक्षरों से अंकित की गयी है। यह क्रांतिकार की बीज आवाज (पुकार) सुनकर भारत के कोने-कोने से जागृत हुये हजारों जीवों ने पराधीन दृष्टि के बंधन की बेड़ी तोड़ डाली है; स्वाधीन दृष्टि के पुरुषार्थ निकट। विवशता-लाचारी जैसी पराधीनवृत्ति के दुर्ग टूट पड़े हैं और अध्यात्म की एक महान क्रांति के विजय का धर्मध्वज जैनशासन के ऊँचे आकाश में आनंद से लहरा रहा है। इस धर्मध्वज की छाया में जीवन में आध्यात्मिक आन्दोलन जगाकर, आत्मा में धर्म क्रांति द्वारा परम शांति प्राप्त करना, वह अपना कर्तव्य है।

वींछीया ग्राम के वटवृक्ष नीचे

पू० श्री कानजी स्वामी

मुझे लगता है संसार-असार... अब इस संसार में
नहीं जाऊँ... नहीं जाऊँ.... नहीं जाऊँ रे.....
मुझे लगता है चैतन्यपद सार.... अब इस
चैतन्य में रम जाऊँ.... रम जाऊँ..... रम जाऊँ रे....

संवत् १९७८ के चैत्र बदी ९ के दिन रात को ९ बजे वींछीया ग्राम में आत्मार्थी महापुरुष कानजीस्वामी को तीर्थंकरों की दिव्यध्वनि की आवाज समयसार ग्रंथ की विचार मुद्रा के समय सुनने में आई; स्मरण में आई।

[श्री कानजीस्वामी के ज्येष्ठ भ्राता श्री खुशालभाई द्वारा ४० वर्ष प्रथम लिखी हुई एक आनन्दकारी नोंध : ऊपर के हस्ताक्षर इन्हीं के हैं।]

# विविध वचनामृत

(आत्मधर्म का नियमित विभाग लेख क्रं० ८)

**विविध वचनामृत का यह विभाग प्रवचन में से, शास्त्रों में से तथा रात्रि चर्चा के प्रसंगों पर से तैया करने में आता है।**

### ( १३९ ) भेदज्ञान

जहाँ तक कषाय और ज्ञान की एकता की ग्रंथि को भेदज्ञान द्वारा जीव तोड़ता ( भेदता ) नहीं, वहाँ तक उसको मोक्षमार्ग का किंचित् मात्र भी लाभ नहीं हो सकता। मोक्षमार्ग का लाभ भेदज्ञान से ही होता है।

'भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किलकेचन'

### ( १४० ) शास्त्र का तात्पर्य

वीतरागी शास्त्रों का तात्पर्य हर समय ऐसा ही होता है कि जिससे आत्मा को लाभ हो और वीतरागता की वृद्धि हो।

### ( १४१ ) शास्त्र का रहस्य स्वानुभूति में है।

स्वानुभूतिरूप आत्मज्ञान से शास्त्रज्ञान भी स्थूल ही है। हजारों वर्ष के शास्त्रज्ञान से भी एक क्षण का स्वानुभवज्ञान अधिक कार्य करता है। शास्त्र भी ऐसा अनुभव प्राप्त करने का ही उपदेश देते हैं। स्वानुभव बिना शास्त्र का वास्तविक रहस्य जानने में नहीं आता। सर्व शास्त्रों का रहस्य स्वानुभूति में समाविष्ट हो जाता है। स्वानुभूति बिना का ज्ञान मोक्षमार्ग की गिनती में नहीं आ सकता। स्वानुभूति द्वारा ही मोक्षमार्ग का प्रारम्भ होता है।

### ( १४२ ) मोक्षमार्ग का अभिनंदन

हे जीव! संत तुझे स्वभाव की पूर्णता और स्वाधीनता बतलाते हैं। एक बार अपनी स्वाधीनता को देख तो सही। तुझे तेरे स्वाधीन परिणमन की बात जँचे तो तुझे धन्यवाद, अर्थात् कि जो ऐसी स्वाधीन परिणमन की बात जँची तो तेरा परिणमन अन्तरलक्ष्य की ओर झुका और स्वाश्रय से अपूर्व सम्यक्दशारूप 'मोक्षमार्ग' प्रगट हुआ, इसलिये तुझे धन्यवाद! जैसे परीक्षा

में पास होनेवाले को अभिनंदन दिया जाता है। वैसे यहाँ पर भी धर्मात्मा को मोक्षमार्ग का अभिनंदन दिया गया है।

**( १४३ ) स्वाधीन मोक्षमार्ग** ( उपादान निज शक्ति है )

हे जीव, तेरा उपादान तेरी निज की शक्ति से परिपूर्ण भरा हुआ है। उपादान की इस प्रकार की शक्ति को और स्वतंत्रता को जानकर स्वाश्रय से अपने स्वकार्य को साध ले, मोक्षमार्ग को साध। तेरे स्वयं के मोक्षमार्ग को साधने में संसार में किसी की भी आजिजी (गुलामी) तेरे को करने की आवश्यकता हो, ऐसा नहीं है। अपने आत्मा के आश्रय से ही तेरा मोक्षमार्ग है। तू अकेला ही (बिना किसी दूसरे की सहायता के) अपना मोक्षमार्ग अपने में ही साध सकता है। वाह! कैसी स्वतंत्र वस्तुस्थिति! दूसरे की मदद (सहायता) लेने जायेगा तो तू अपने स्वाधीन मोक्षमार्ग को नहीं साध सकेगा। मोक्षमार्ग पराधीन नहीं है, मोक्षमार्ग 'पर' से अत्यंत निरपेक्ष है।

**( १४४ ) साधक की व्यवस्थित बुद्धि** ( मार्ग का दृढ़ निश्चय )

सभी तीर्थंकर भगवंतों ने अनुभव करके बतलाया है कि मोक्षमार्ग कैसा है। उसका दृढ़ निर्णय करके और स्वयं मोक्षमार्गरूप होकर 'प्रवचनसार' में आचार्यदेव कहते हैं कि मेरी बुद्धि व्यवस्थित हो गयी है, मैंने मोक्षमार्ग को अवधारित किया है। कृत्य-करनेयोग्य कार्य किया जाता है। मार्ग के निर्णय में ही जिसकी भूल हो, वस्तुस्वरूप समझने में ही जिसकी भूल हो, जिसने मार्ग का धारण (मार्ग पर चलना प्रारम्भ) नहीं किया, उसकी बुद्धि व्यवस्थित नहीं होती, सम्यक् नहीं है-परंतु उसकी बुद्धि (मति) अस्थिर है अर्थात् 'मिथ्या' है। मार्ग का निर्णय करके बुद्धि को दृढ़ व्यवस्थित बनाये बिना मोक्षमार्ग सध सकता नहीं।

**( १४५ ) आकुलता को दूर करने का मार्ग**

'मैं ज्ञान हूँ' ऐसा ज्ञान का विश्वास करे तो सभी प्रकार की उलझन-आकुलता दूर हो जाती है। क्योंकि ज्ञान में उलझन है ही नहीं, ज्ञान में प्रतिकूलता है ही नहीं। ज्ञान तो आनंदरूप और समाधानरूप है। सर्व दुःखों की परम औषधि अर्थात् 'ज्ञान', इसीलिये कहा है कि—

ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारन,
यह परमामृत जन्म-जरा मृत्यु रोग मिटावन।

भवरोग को भी दूर करने की जिसकी शक्ति है, वह ज्ञान अन्य किसी प्रकार की उलझन-आकुलता रहने देगा? अर्थात् नहीं।

### ( १४६ ) आत्मा का स्वभाव

देखो भाई, आत्मा का स्वभाव ऐसा अपूर्व है कि—जिसकी आराधना से संसार का अंत आता है। और मोक्षसुख प्राप्त होता है। जिस स्वभाव के सामने दृष्टि करने से आनंद आता है और ऐसा आनंद आता है कि विश्व के दूसरे किसी भी पदार्थ में आनंद है ही नहीं; जिस स्वभाव की महिमा याद करने से जगत के सभी दु:ख दूर हो जाते हैं... ऐसे स्वभाव को धारण करनेवाला आत्मा स्वयं है।

### ( १४७ ) सर्वोत्कृष्ट

जगत में सबसे उत्तम क्या ?—कि आत्मा का स्वभाव।

जगत में सबसे उत्तम काम क्या ?—कि स्वभाव की आराधना।

स्वभाव की आराधना ही मुमुक्षु-जीवन जीने का काम है।

सभी शास्त्रों का सार क्या है ?—कि स्वभाव की आराधना करना।

### ( १४८ ) धर्मी जीव

धर्मी जीव अंतर अनुभव से अपने चैतन्यस्वभाव को देखकर परम प्रसन्न होता है। संयोग और संयोगी भाव से मध्यस्थ रहता है।

# सम्मेदशिखरजी तीर्थधाम में

[लेखक - ब्रह्मचारी हरिलाल जैन]

फाल्गुन सुदी १३ (तारीख २४ मार्च) गुरुदेव के साथ बहुत दिनों से जिनके दर्शन की प्रतीक्षा कर रहे थे, यह पवित्र सिद्धिधाम शाश्वत तीर्थाधिराज सम्मेदशिखर धाम का दर्शन होते ही आज सभी को बहुत हर्ष हुआ, क्षेत्र से अनेक मील दूर थे, आकाश प्रातःकाल के बादलों से घिरा हुआ था, फिर भी जिसप्रकार घनघोर कर्म बादल को भेदकर भी साधक अपने साध्यरूप सिद्धस्वरूप को देख ही लेता है; उसीप्रकार बादलों को बेधकर भी भक्तों की दृष्टि शिखरजी तीर्थधाम को देख लेती थी। मधुवन की वनराजी के मधुर दृश्य के अवलोकन में यहाँ हजारो निर्ग्रंथसंत विचरते थे, यह स्मरण करते थे, शिखरजी तलहटी में आये, कलकत्ता से श्री मोहनलालजी पाटनी आदि मंडल ने बड़ी भक्ति से स्वागत किया। प्रथम तीर्थधाम में विराजमान जिनेन्द्र भगवंतों को स्वामीजी ने अत्यंत भक्ति से नमस्कार-वंदन किया, सभी को अपार हर्ष हुआ, श्री चंद्रप्रभ-पुष्पदंत, श्री पार्श्वनाथ, श्री महावीरादि २४ भगवंतों को और ५२ जिनालयसहित नंदीश्वर धाम, मानस्तंभजी तथा बाहुबली भगवान आदि के भक्तिपूर्वक दर्शन किये पश्चात् पंडाल में मंगलाचरण के प्रवचन में स्वामीजी ने कहा कि—यह श्री सम्मेदशिखरजी तीर्थ जहाँ अनंत संख्या में जीव निर्ग्रंथदशा और शुद्धोपयोगरूप मुनित्व द्वारा सिद्ध हुए हैं, इसलिये तीर्थ है-मंगल है, द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव चार प्रकार मंगल है। भगवंतों ने मंगलभाव के द्वारा जहाँ सिद्ध पद प्राप्त किया, वह क्षेत्र भी मंगल है। इस क्षेत्र से अनंत जीव सिद्धपरमात्मा हुए हैं और ऊपर लोकाग्र में समश्रेणी विराजमान हैं, उन सभी सिद्ध भगवंतों के स्मरण में निमित्तरूप यह क्षेत्र भी मंगल है, और सिद्धस्वयप के स्मरण के अपने भाव को आत्मभाव में लगाया जाये, वह भाव मंगल है। इसप्रकार तीर्थधाम में मंगल किया, दोपहर में समयसार गाथा ७२ पर प्रवचन हुआ, सात बड़ी बड़ी बसें, २० मोटर द्वारा ५०० उपरांत यात्री संघ में थे। उपरांत बहुत बड़ी संख्या में परभारे ट्रेन आदि द्वारा आ पहुँचे थे। तीन हजार उपरांत श्रोताजनों की सभा में स्वामीजी ने प्रथम तो सीमंधर भगवान को याद किया और श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव का इतिहास कहा, ७२वीं गाथा में कहा कि अहो! आत्मा और आस्रवों की भिन्नता का ऐसे भेदविज्ञान द्वारा अंतरंग में राग से भिन्न चैतन्य के अनुभव में झूलते-झूलते

आचार्यदेव जब यह गाथाएँ लिखते होंगे, तब कैसा अवसर होगा!! अहो, धन्य मुनिदशा!! सम्मेदशिखर ऊपर विराजमान अनंत सिद्ध भगवंतों के प्रति दोनों हाथ जोड़कर स्वामीजी ने कहा—प्रभो! यहाँ से पूर्णानंदमय मोक्ष पद साधकर सादि अनंत अक्षय अनंत सुखसहित आप लोकाग्र में शिरछत्ररूप विराज रहे हैं। इसप्रकार सिद्ध भगवन्तों के स्मरण के लिये यह यात्रा है।

प्रवचन के बाद श्री जिनेन्द्रदेव की रथयात्रा निकाली थी, जिसमें सारथी के रूप में स्वामीजी बैठे थे। रथयात्रा पांडुकशिला पहुँची, यहाँ से सारा सम्मेदशिखरजी का दृश्य बहुत सुंदर दिखता है, एक तरफ चंद्रप्रभु की टोंक, और दूसरी ओर श्री पार्श्वप्रभु की टोंक, तथा बीच में अनेक सिद्धक्षेत्रों की टोंक—इस सुमधुर दृश्य के अवलोकन के साथ अनंत साधक-संतों की स्मृति होती है। जिन्होंने यहाँ से सिद्धि प्राप्त की है, और हमें भी उसी ध्येय पर पहुँचना ही है।

रात्रि को मंदिरजी में भक्ति का बहुत सुंदर कार्यक्रम था, पूज्य बहिनों ने भक्ति कराई थी, फागण सुदी १४ को सवेरे समूहरूप में जिनेन्द्र महापूजन का खास कार्यक्रम रखा था, बहुतों ने प्रवचन की माँग की थी किंतु स्वामीजी ने कहा कि यह महान तीर्थ है, अष्टाह्निका की १४ है, आज बहुत समय तक शांति से पूजा करने का भाव है, बस हजारों यात्री प्रभु पूजा में एकत्र हुए, व्यवस्थिरूप में एक तान, एकस्वर से पूजा शुरु हुई, २४ भगवान की पूजा, नंदीश्वर पूजा, शिखरजी-पूजा आदि पूजायें हुईं। पूज्य बहिनश्री ने पूजा पढ़ाई थी। दोपहर को प्रवचन के पश्चात् बीस पंथी कोठी के सामने पहाड़ पर विराजमान श्री बाहुबली भगवान के महा अभिषेक को याद करके भक्तगण अभिषेक करते थे। स्वामीजी ने भी भगवान का अभिषेक किया। शिखरजी की तलहटी में बाहुबली भगवान का वीतरागीदृश्य भक्तों के चित्त को आकर्षिक करता है। तीसरे दिन पहाड़ पर वंदनार्थ सभी यात्रियों को जाना था; रात्रि को २.०० बजे सिद्ध भगवान के जय-जयकार सहित आनंद से महातीर्थ की यात्रा गुरुदेव के साथ शुरु की, रास्ते में भक्तिभजन करते-करते यात्री चढ़ रहे थे, भक्ति के बल से कठिन मार्ग सुगम बन रहा था, यात्रियों को जरा भी थकान लगती, वहाँ गुरुजनों का साथ उनकी थकान को दूर कर देता था और सिद्धिधाम में पहुँचने का बल देता था। आकाश में पूर्णचन्द्र प्रकाशमान थे, मार्ग में स्वामीजी तीर्थंकरों और सिद्धों का स्मरण कर कर उत्तम उद्‌गार प्रगट करते थे। खड़े-टेकरेवाला मार्ग देखकर आप कहते थे कि—भगवान तीर्थंकरदेव तो आकाश में पाँच हजार धनुष्य ऊँचे विचरते थे; और लोकान्त ऊपर अनंत सिद्ध भगवंत आज विराजमान हैं, सादि

अनंत काल इस ही प्रकार अनंत संपूर्ण सुख में विराजमान रहेंगे, उनकी स्मृति के लिये-भक्ति के लिये यह यात्रा है। इसप्रकार स्वामीजी के साथ सिद्धों को याद करते-करते पावन तीर्थ की यात्रा करते थे। बीच में मोक्षमार्ग की भावनायें भाते थे, सवेरे पाँच बजे करीब दूर-दूर पार्श्वप्रभु की सुवर्णभद्र टोंक का दर्शन हुआ, देखते ही 'हमें भी वहाँ तक पहुँचना है' इसप्रकार ध्येय के लक्ष से यात्रियों के पैरों में नया बल आता था और पारसप्रभु के जय-जयकार करते-करते आगे बढ़ रहे थे। यहाँ से चंद्रप्रभु की टोंक भी दिखती है; शिखरजी की दोनों दिशा की ऊँची-ऊँची दो टोंक एकसाथ देखने पर सारे शिखरजी तीर्थ को मानों नयनों में प्रविष्ट कर दूँ... और सभी सिद्ध भगवंतों को ज्ञान में प्रविष्ट कर दूँ, ऐसी-ऐसी भक्तिभीनी ऊर्मि जाग उठती है, इस पावन तीर्थराज की विशालता के सामने यात्रियों का शिर झुकता है। प्रथम टोंक आयी, सब यात्रियों ने आनंद जय-जयकार करते हुए कुन्थुनाथ प्रभु के चरणों का स्पर्शन-वंदन किया। गुरुदेव ने भी अर्घ लेकर चढ़ाया, पीछे बहिनें क्रमशः वंदनादि कर रही थीं, गुरुदेव ने इसप्रकार नौ टोंकों का दर्शन किया, पश्चात् चंद्रप्रभु की टोंक आयी, जो सबसे दूर होने से मानों संसार से दूर-ऐसे चंद्रपभु की एकत्वभावना को प्रसिद्ध कर रही थी। मार्ग कठिन सा है, किंतु हमें हमारी यात्रा के ध्येय को पहुँचना ही है—ऐसे दृढ़ निश्चय के बल से यात्री आगे बढ़ता है। 'दृढ़ निश्चयी' मुमुक्षु विषमता से दूर और स्थायी समस्वभावी निज तत्त्व को निकट करता हुआ जिसप्रकार अपने इष्ट ध्येय को प्राप्त करता ही है, बस-आनंद से गुरुदेव के सथ यात्रा करके दूसरी टोकों की ओर गति की, जल मंदिर से आगे प्रथम टोंक के पास आ पहुँचे। १६ टोंक की यात्रा प्रदक्षिणा आकार से होती है, पाँच मील घूमकर थकित यात्री जहाँ सामने नजर करते हैं, तो पार्श्वप्रभु की टोंक का दर्शन होता है, हृदय में हर्ष-उत्साह बढ़ता है, थकान को भूल जाता है, पीछे दृष्टि डालकर देखते हैं तो ख्याल आता है कि अहा इतनी बड़ी ऊँची-ऊँची टोंकों की यात्रा कर ली! सिद्धिधाम की ऐसी महान विशालता को देखकर दृष्टि तृप्त होती है, यात्रा की महिमा बढ़ती है। फिर सिद्धभगवंतों के सन्मुख दृष्टि रखकर गुरुदेव के पीछे-पीछे चलकर श्री सुपार्श्वनाथ, वगैरह टोंक की यात्रा करके पार्श्वनाथ प्रभुजी के चरण समीप आ पहुँचे, चरणों का अति भक्तिपूर्वक दर्शन करके अर्घ चढ़ाया, मंदिर सैकड़ों यात्रियों से भर गया था। तीर्थधाम की आज की यात्रा से स्वामीजी भी बहुत आनंदित थे, (सरदार शहर निवासी धर्मरत्न श्री दीपचंदजी शेठियाजी भी साथ-साथ थे।) स्वामीजी बारंबार कहते थे कि यात्रा बहुत सरस

हुई। यात्रा प्रसंग पर पूज्य बहिनश्री-बहिन ने तीर्थ महिमा का एक खास भक्ति भीगा स्तवन बनाया था, यह स्तुति पूज्य स्वामी ने गाई, सब झेलने लगे।

अनंत जिनेश्वरदेव प्रभुजी को लाखों प्रणाम-२
शाश्वत तीरथधाम प्रभुजी को लाखों प्रणात-२
अनंत जिनेश्वर मुक्ति पधारे, समश्रेणी से सिद्धि विराजे,
चैतन्य मंदिर नित्य विचरते, सिद्धानंद की लहरों में बसते,
अशरीरी भगवान, प्रभुजी को लाखों प्रणाम,
ज्ञानशरीरी भगवान, प्रभुजी को लाखों प्रणाम,
विचरे अनंत तीर्थंकर देवा, कण-कण पावन हुए शिखर के,
अनंत तीर्थंकर स्मृति में आते, अनंत मुनि के ध्यानों स्फुरते,
पावन सिद्धिधाम प्रभुजी को लाखों प्रणाम,
शिखरजी को लाखों प्रणाम। (स्तवन तो बड़ा था)

अहा, इस समय आपके अद्‌भुत भाव थे। प्रार्थना करने से इस यात्रा की आनंदकारी स्मृतिरूप में शिखरजी की सबसे ऊँची टोंक ऊपर बैठे-बैइे गुरुदेव ने हस्ताक्षर में लिख दिया कि—**'सम्मेदशिखर की जय हो-जय हो!'**

यात्रा पूर्ण करके आनंदमंगल के गीत गाते, डेढ़ बजे नीचे आये, और महान सिद्धिधाम की यात्रा करानेवाले कहान गुरु के जय-जयकार से तीर्थधाम गूँज रहा था। सब तीर्थ महिमा की चर्चा कर रहे थे। तारीख २८ को स्वामीजी ईसरी-आश्रम में पधारे थे, वहाँ नये जिनमंदिर में दर्शन-भक्ति किये, श्री ब्रह्मचारिणी कृष्णाबाई के ब्रह्मचारिणी महिला आश्रम का अवलोकन किया, वहाँ भी जिनप्रतिमाजी विराजमान हैं। तारीख २९ गिरीडीह के समाज की विनती से स्वामीजी वहाँ पधारे थे, रास्ते में जृंभिका गाम की ऋजुवालिका नदी आती है (आज उसी को बराकर नदी कहते हैं) इस नदी के तट पर भगवान महावीर को केवलज्ञान हुआ था, उस मंगलक्षेत्र का दर्शन किया, तथा आज पार्श्वनाथ भगवान के केवलज्ञान का मंगल दिन था। इसप्रकार क्षेत्रमंगल, कालमंगल और भावमंगल का स्वरूप (अर्थात् सर्वज्ञ भगवान की निश्चयस्तुति का स्वरूप समयसार गाथा ३१ द्वारा स्वामीजी ने प्रवचन में समझाया था) मधुवन में समयसार गाथा ७२ पर प्रवचन हुए, हरेक प्रवचन में तीर्थराज को भक्तिसहित याद करके

कहते थे कि यहाँ तो ऊपर अनंत सिद्ध भगवान विराजमान हैं; भगवान के धाम में तो आत्मा की उत्तम बात समझनी चाहिये न! बारंबार भगवंतों को याद करके, हाथ द्वारा ऊपर सिद्धालय का दिग्दर्शन करके स्वामीजी सिद्धि का पंथ दिखाते थे, इसप्रकार छह दिन तक गुरुदेव के साथ शिखरजी-सिद्धिधाम में रहे।

**पावापुरी-सिद्धिधाम—**

(तारीख ३०-३१ मार्च चैत्र बदी ५-६) शुरु में स्वामीजी का स्वागत हुआ, स्वामीजी प्रथम जलमंदिर में पहुँचे और भक्तिपूर्वक दर्शन किये, अर्घ चढ़ाये। धर्मशाला में आकर महावीर प्रभु का दर्शन किया, पावापुरी अतिशय मनोहर सिद्धक्षेत्र है। पद्म सरोवर के जलमंदिर में वीरप्रभु के चरण सुशोभित हैं, जो भगवान के मोक्षगमन की स्मृति करा रहे हैं। प्रथम दिन भव्य रथयात्रा निकाली, जिनेन्द्र भगवान के अभिषेक पूजन हुए। रात्रि को भक्ति श्री वीरप्रभुजी सन्मुख पूज्य बेनश्री-बहिन ने कराई थी। वीर प्रभु की मनोहर प्रतिमा देखते ही बनती है, मानों कि पावापुरी में मोक्षगमन के लिये महावीरप्रभु तैयार ध्यान मुद्रा में खड़े हैं, ऐसा वातावरण स्मृति समक्ष चित्रपटवत् चलता है। दूसरे दिन पावापुरी से २० मील दूर राजगृही, तथा कुण्डलपुर यात्रार्थ गये थे। भगवान महावीर प्रभु की दिव्यध्वनि के पावन प्रवाह जहाँ से शुरु हुए थे, ऐसे विपुलाचल धाम के दर्शन से बहुत आनंद हुआ, यहाँ भगवान का समवसरण, गौतमस्वामी का गणधर पद, बारह अंग शास्त्रों की रचना, मुनिसुव्रत भगवान के चार कल्याणक आदि का स्मरण होता था। यह राजगृही, २३ तीर्थंकर भगवंतों के समवसरण से पावन हुई है।

**कोडरमा—**तारीख १-४-६७ यहाँ समाज ने प्रेम भरा स्वागत किया, सारे संघ की व्यवस्था की। यहाँ अभ्रक की खानें हैं, स्वामीजी ने प्रवचन में अभ्रक का दृष्टांत देकर कहा कि जैसे उनमें अनेक प्रतर हैं, वह तो भेदरूप हैं किंतु चैतन्य शक्ति में केवलज्ञान के अनंत अंश प्रगट होते रहते हैं, वह अखंड है, अमाप शक्ति से पूर्ण है, ऐसी अनंत पर्याय शक्ति की आत्मा में ताकत है कि अनंत काल तक अनंतज्ञान-आनन्द की पर्याय खिलती है, तो भी आत्मा की ज्ञान और आनंद शक्ति कभी कम नहीं होती।

**हजारीबाग—**यहाँ शेठ श्री कन्हैयालालजी ने सारे संघ की व्यवस्था की। रात्रि को बड़ा भारी जुलूस निकाला। स्वामीजी से प्रवचन भी कराया, समाज ने भारी उत्साह दिखाया था।

**रांची**—तारीख २-४-६६ यहाँ जिनमंदिर बहुत बड़ा सुंदर मनोज्ञ और दर्शनीय है। श्री हरखचंदजी सा० तथा भागचंदजी तथा अनुपूचंदभाई खारा ने दो दिन तक संघ को ठहराया था। जिनमंदिर में पूजन पश्चात् दो दिन तक दो बार प्रवचन जिनमंदिर में भक्ति का उत्तम कार्यक्रम था। यात्री संघ उपरांत रांची के धर्म जिज्ञासुओं ने बड़ी संख्या में प्रवचनादि का लाभ लिया।

**धनबाद**—तारीख ४ यहाँ गुजराती समाज ज्यादा है। सभी ने उत्साह से भाग लिया। श्री शांतिलाल उमीयाशंकर के वहाँ स्वामीजी ठहरे थे। सारा संघ की व्यवस्था उनके द्वारा थी। प्रवचन में बड़ी भारी संख्या थी। यहाँ से आसनडोल रात्रि-सवेरे चिनसुरा शाम को कलकत्ता।

**कलकत्ता**—तारीख ६ अप्रेल, सवेरे भव्य स्वागत हुआ। विशाल मंडप में प्रथम स्वागत अध्यक्ष श्री गजराजजी गंगवाल ने स्वागत प्रवचन किया, पश्चात् ४-५ हजार श्रोता हमेशा दो बार बड़ी शांति से श्रवण करते थे। रविवार के दिन बहुत बड़ी संख्या थी।

**कलकत्ता से बोटाद तक के समाचार—**

पूज्य स्वामीजी चार दिन कलकत्ता रहे। तारीख ९ अप्रेल शाम को चिन्सूरा, तबियत अस्वस्थ होने से तारीख १०-११ धनबाद में, तारीख १२-१३ ईसरी आश्रम में रहे। तीर्थराज की तलहटी के उपशांत वातावरण में सन्मुख ही शिखरजी के दर्शन से आनंद होता था, बारंबार यात्रा की भावना पूर्ण होती थी; तीर्थराज के प्रसन्नकारी वातावरण में दो दिन विश्रांति से स्वामीजी की तबियत स्वस्थ हो गई। (चार दिन में जो कार्यक्रम गया शहर, फतेहपुर, मैनपुरी आदि के थे, वहाँ स्वामीजी नहीं जा सके, गया शहर में तो श्री गौरीलालजी जैन और श्री हीरालालजी काला का इतना बड़ा भारी उत्साह था कि आपने पाँच हाथी आदि बड़े ठाटबाट से भव्य स्वागत आदि की तैयार कर रखी थी।) स्वामीजी ईसरी से ट्रेन द्वारा तारीख १४ को कलकत्ता, वहाँ से हवाई विमान द्वारा आगरा होकर तारीख १५ अप्रेल (चैत्र सुदी ५) फिरोजाबाद पधारे।

**फिरोजाबाद**—में जैन समाज द्वारा स्वागत हुआ। सेठ श्री छदामीलालजी ने सारे संघ की व्यवस्था की थी- संघ के यात्री कलकत्ता से ईसरी, गया शहर, वाराणसी, अयोध्या आदि होकर फिरोजाबाद आ गये थे, शेठजी को बड़ा भारी उत्साह था, आपने कई वर्ष पूर्व २० लाख के खर्च से भव्य जिनालय तथा मानस्तंभ तथा यात्रियों के लिये धर्मशाला आदि बनाया है। मानस्तंभ का नक्कासी काम सोनगढ़ के मानस्तंभ के अनुसार है (सोनगढ़ में मानस्तंभ के,

प्रथम चबूतरा की दिवाल के पीछे दो फुट दूर दूसरी कटनी पर स्वामीजी का चित्र खुदा हुआ है, ऐसा यहाँ नहीं है।) यहाँ श्री छदामीलालजी की जैन नगरी में पूज्य कानजीस्वामी को तथा सारे संघ को ठहराया गया था, उत्तम व्यवस्था थी। जिनमंदिर में महावीर भगवान के बड़े प्रतिमाजी कमल के ऊपर सुशोभित हो रहे हैं। लाडनुं (राजस्थान) में भी बहुत सुंदर दर्शनीय जिनमंदिर हैं, जो इस जैन नगरी के समान भव्य हैं।

**बुलन्दशहर**—तारीख १६-४-६७ यहाँ मुख्य श्री कैलाशचंदजी हैं। जैनों के घर थोड़े होने पर भी बड़ी भारी तैयारी थी। बुलन्द आवाज और उत्साह से स्वागत किया। सभी ने स्वामीजी के प्रवचन में भाग लिया, रात्रि को जिनमंदिर में भक्ति, तत्त्वचर्चा थी समाज की ओर से स्वामीजी को अभिनन्दनपत्र समर्पित किये गये। बाहरगाँव से यहाँ सैकड़ों जिज्ञासु पधारे।

**गाजियाबाद तथा शहादरा**—तारीख १७ दिल्ली जाते समय रास्ते में दोनों गाँव के जिनमंदिर में स्वामीजी ने दर्शन किये। दिल्ली में अहिंसा मंदिर में भी दर्शन किये।

**दिल्ली**—प्रथम दिन रात्रि को शेठ श्री शांतिप्रसादजी शाहू जैन खास धर्म जिज्ञासा से स्वामीजी के पास आये थे, भक्तिपूर्वक तत्त्वचर्चा की थी, इस आत्मा को शांति कैसे मिले उस संबंध में जिज्ञासा पूर्वक प्रश्न किये थे, तथा स्वामीजी को अपने मुकाम पर ठहरने के लिये विनती की थी, स्वामीजी वहाँ पधारे थे, रात्रि को भी धर्मचर्चा हुई थी। बालमंदिर में शाम को जिनेन्द्र भक्ति हुई थी।

तारीख १७ सवेरे प्रवचन के बाद श्री जिनेन्द्र भगवान की भव्य उल्लासकारी रथयात्रा निकली थी, श्वेत अश्वों सहित सुनहरी रथ, अनेकविध नक्कासी से सुशोभित था, भगवान जिनेन्द्रदेव के रथ के सारथी के रूप में कानजीस्वामी बैठे थे, बहुत-बहुत उल्लास और भक्तिपूर्वक रथयात्रा लालमंदिर से शुरु होकर वैदवाड़ा मंदिर आयी। दोपहर को स्वामीजी समंतभद्र विद्यालय में गये थे। वहाँ श्री विद्यानंदजी मुनि महाराज के साथ मुलाकात की थी और वात्सल्यपूर्वक अनेकविध तत्त्वचर्चा हुई थी और इस कारण सभी को विशेष प्रसन्नता हुई थी।

श्री विद्यानंदजी मुनि महाराज दोपहर को स्वामीजी के प्रवचन के समय भी मंडप में पधारे थे और प्रवचन के पश्चात् बीस मिनट तक प्रवचन देकर प्रवचन में प्रसन्नता व्यक्त की, तथा जैन समाज में शांति बढ़े, ऐसी प्रेरणा की थी, पश्चात् श्री विद्यानंदजी मुनि महाराज के आदेश पूर्वक श्री शेठ शाहू शांतिप्रसादजी ने दिल्ली जैन समाज की ओर से श्री कानजीस्वामी

को अभिनंदन पत्र अर्पण किया गया। इस प्रकार दिल्ली का तीन दिन का कार्यक्रम अत्यानंदपूर्वक हुआ, दिल्ली के गौरव को शोभारूप ऐसा पूज्य स्वामीजी का प्रभाव था, दिल्ली में करीब २५ जितने जिनमंदिर हैं, उनमें से अनेक मंदिरों का दर्शन यात्रियों ने किया। जैना वाँच कं० वाले श्री प्रेमचंदजी आदि सज्जनों तथा मुमुखु मंडल तथा दिल्ली समाज ने जो अपूर्व धर्म प्रेम बताया है, सबको धन्यवाद।

**मथुरा**—तारीख २०-४-६७ अंतिम केवलज्ञानी भगवान श्री जंबू स्वामी का यह तीर्थक्षेत्र मोक्षधाम है; चौथे काल में भगवान रामचंद्रजी के समय श्री मनुस्वर मनु आदि सप्तर्षि श्रुतकेवली भगवंतों के चरणों से पावन हुआ यह तीर्थक्षेत्र है। आसपास की भूमि में से प्राचीन प्रतिमा आदि मिले हैं। इस तीर्थधाम में आते ही स्वामीजी ने जंबुस्वामी के चरणों को भक्ति से स्पर्श किया; सप्तर्षि मुनि भगवंतों के दर्शन किये; जंबुस्वामी की प्रतिमाजी के भी दर्शन किये पश्चात् श्री जंबुस्वामी की पूजा कराई। धन्य है उस परम विरागी जंबुस्वामी, कि जिन्होंने विवाह के दूसरे ही दिन स्त्री आदि सर्वसंग तजकर मुनिदीक्षा धारण की। श्री अजितनाथ आदि अनेक जिन भगवंतों के भी दर्शन किये, पश्चात् जिनमंदिर के चौक में सिद्ध भगवान श्री जंबुस्वामी का स्मरण करके गुरुदेव ने भावभीगे मांगलिक सुनाया। उसमें कहा कि हे प्रभो! आप तो इस भरतक्षेत्र के अंतिम सर्वज्ञ हैं और सिद्धालय में-यहाँ से ही समश्रेणी में-विराजमान हैं। प्रभु! आप सर्वज्ञ हैं, हम तो आपके बालक हैं, हमारा ज्ञान अल्प है किंतु भक्ति सहित हमारे ज्ञान में आपको विराजमान करके हम भी यथाशक्ति सिद्धपद को साध रहे हैं। मथुरा शहर में तथा आसपास में ६ या ७ जिनमंदिर हैं। जंबुस्वामीवाले मंदिर के सन्मुख मानस्तंभ भी तैयार हो रहा है। वाराणसी से पंडित श्री कैलाशचंदजी यहाँ चौरासी में पधारे थे।

यात्री संघ के लिये सभी व्यवस्था सौ० विमलाबहिन भगवानदास (बच्छराजजी गंगवाल की सुपुत्री) की ओर से उन्हीं के घर पर थी। चौरासी मथुराक्षेत्र जंबुस्वामी की निर्वाणभूमि है, यहाँ इन अंतिम केवली भगवान तथा मुनिवरों के स्थान की यात्रा से बड़ा भारी आनंद हुआ। दोपहर को समयसार गाथा ६ ऊपर प्रवचन हुआ था, तथा रात्रि को जिनमंदिर में बहिनों ने वैरागी जंबुस्वामी की तथा सप्तर्षि मुनि भगवंतों की भावभीनी भक्ति कराई थी। यात्रीसंघ ने यहाँ से रात्रि को आगरा प्रस्थान किया। स्वामीजी ने दूसरे दिन सवेरे विशेष भावपूर्वक जंबुस्वामी आदि भगवंतों के दर्शन करके मथुरा से आगरा प्रयाण किया।

**आगरा**—तारीख २१, प्रथम पूज्य स्वामीजी ने महावीर जैन कालेज में आकर जिनमंदिर में दर्शन किये, पश्चात् विशाल जुलूस से स्वागत हुआ। उसमें आगरा समाज की सब जनता ने उत्साह से भाग लिया, यहाँ तीस जिनमंदिर हैं, दूसरे दिन चैत्र सुदी १३ महावीर जन्मोत्सव था। सवेरे एक भव्य जुलूस निकाला गया था; खास मंडप में स्वामीजी का प्रवचन हुआ था। जिसमें महावीर भगवान के अंतरंग जीवन का स्वरूप समझाया, सर्वज्ञ वीतराग कथित दो नयों का अर्थ करने की पद्धति समझाई। रात्रि को जिनेन्द्रदेव की भक्ति का कार्यक्रम था। यहाँ स्वामीजी को थकान बुखार और अस्वस्थता होने से आराम के लिये जयपुर पधारे।

**जयपुर**—में चार दिन ठहरना हुआ और अजमेर, चित्तौड़, कुण और भींडर के कार्यक्रम बन्द रखने पड़े। जयपुर से उदयपुर जाना ही था।

## उदयपुर-जिनेन्द्र वेदी प्रतिष्ठा उत्सव

**जयपुर से**—स्वामीजी हवाई जहाज द्वारा तारीख २७ को उदयपुर पधारे और १२ मील दूर ढबोक गाँव में एक दिन आराम किया। यहाँ प्राचीन जिनमंदिर में भगवान के दर्शन किये। कुण गाँव में जिनेन्द्र वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ था; स्वामीजी का वहाँ जाने का कार्यक्रम था स्वामीजी के दर्शन के लिये तथा प्रवचन सुनने के लिये हजारों लोग कुण में एकत्र हुए थे किंतु स्वामीजी वहाँ न जा सके। इसीप्रकार अजमेर में भी बड़ी तैयारी भव्य स्वागत आदि के लिये थी, किन्तु होनहार ऐसा ही था।

**उदयपुर**—तारीख २८ वैशाख बदी ५ के दिन भव्य स्वागत पूर्वक स्वामीजी ने उदयपुर शहर में प्रवेश किया। नये जिनमंदिर में वेदी प्रतिष्ठा निमित्त सभामण्डप में करीब चार हजार श्रोतागण बड़ी रुचि से सुनते थे—प्रथम आत्मा का जीवन बताकर अपूर्व मांगलिक का प्रवचन मंगल उच्चारण सहित किया। उदयपुर शहर के मध्य चोक में मुमुक्षुभाईयों की ओर से नया जिनमंदिर तैयार हुआ है, उसमें चन्द्रप्रभ आदि जिनेन्द्र भगवन्तों की वेदी प्रतिष्ठा का उत्सव मनाया गया। आसपास के अनेक गाँवों से भी बहुत लोग उत्सव में भाग लेने आये थे। मानो मेवाड़ मारवाड़ और गुजराती साधर्मी बन्धुओं का वात्सल्यमय धार्मिक सम्मेलन है। महाराणा प्रताप की यह उदयपुर नगरी मनोहर है और प्राकृतिक सौन्दर्य से सुशोभित हो रही है। जैनधर्म का प्राचीन गौरव आज भी प्रत्यक्ष दीख रहा है। वहाँ के एक मंदिरजी में सम्मेदशिखरजी पर्वत की सुंदर रचना संगमरमर की बनी है। दूसरे भी १० जिनमंदिर हैं। वेदी

प्रतिष्ठा में, पूजा विधान, जाप्य, जिनबिंब स्थापना, झंडा आरोपण, मंडल विधान पूजा, इन्द्रों की स्थापना-वेदी, कलश-ध्वज शुद्धि जलयात्रा आदि सब विधि परम उत्साह पूर्वक हो रही थी। पूज्य स्वामीजी यहाँ दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम के पास ठहरे थे... बैशाख बदी ६ शाम को लकड़वास गाँव की पाठशाला की बालाओं ने धार्मिक संवाद द्वारा सुंदर तत्त्वचर्चा की थी। यहाँ छोटी बालाओं को भी छहढाला आदि कंठस्थ है। इस समय ऐसा लगता था कि जैन बालकों में धार्मिक संस्कार देने के लिये जितना आवश्यकता जिनमंदिरों की है, उतनी ही आवश्यकता जैन पाठशालाओं की और पढ़ानेवालों की है। इस बारे में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, न धर्मो धार्मिकैर्विना।

उदयपुर में हमेशा दोनों समय स्वामीजी के प्रवचन होते थे, समाज में बड़ा भारी उत्साह था। बैशाख बदी ८ तारीख ०१-०५-६७ के शुभ दिन सवेरे जिनमंदिर में श्री जिनेन्द्र भगवंतों की मंगल प्रतिष्ठा बहुत आनंदोल्लासपूर्वक हुई। यहाँ मुख्य व्यवस्थापक धार्मिक नेता श्रीचंद्रसेनजी, श्री उग्रसेनजी बंडी हैं। अन्य साधर्मी बन्धुओं का सहयोग भी अच्छा है। वेदी में मूल नायक भगवान श्री चन्द्रप्रभ स्वामी की प्रतिमाजी की स्थापना में उछामणि जयपुर निवासी सेठ श्री पूरणचंदजी गोदीकाजी ने ली थी, वेदी पर स्वस्तिक आदि विधि होने के पश्चात् जयनादों सहित, बहुत उत्साहमय भावों सहित स्वामीजी ने स्वहस्त से जिनेन्द्रदेव को वेदी पर विराजमान किये, गोदीकाजी साथ में ही थे, उदयपुर की समाज को बहुत उल्लास था। पाँच हजार से ज्यादा संख्या में जन समुदाय इस उत्सव को बड़ी भक्ति से देख रहे थे, वेदी में श्रीचन्द्रप्रभ श्री नेमिनाथ, श्री महावीर प्रभु विराजमान किये गये। शिखर पर कलश तथा ध्वजारोहण भी परम हर्ष से हुआ। जिनवाणी शास्त्रजी समयसार की स्थापना हुई, इसप्रकार श्री स्वामीजी के प्रताप से मेवाड़ में राणाप्रताप की राजधानी में जिनेन्द्र भगवंतों की प्रतिष्ठा उत्तम प्रकार से हुई। जिसको देख-देखकर भक्तगण भक्ति से नृत्य करने लगे थे।

जिनेन्द्र प्रतिष्ठा के पश्चात् मंगल प्रवचन हुआ और भव्य रथयात्रा निकाली थी-इस जिनेन्द्र रथ यात्रा के लिये अजमेर से एक खास उत्तम जाति का रथ बुलाया गया था। यह रथ ८० वर्ष पूर्व ८०००० (अस्सी हजार रुपये) में तैयार हुआ था। आज ४-५ लाख रुपये हो सकते हैं। ऐसा बड़ा सुंदर-भव्य सोनेरी रथ था, रथ में आगे अंबाड़ी आदि साज सहित दो हाथी तथा दो श्वेत अश्व (प्लास्टर के) बहुत सुंदर थे और सोनेरी नकाशी से सुशोभित रथ के बीच

में श्री जिनेन्द्रदेव विराजमान थे, दोनों पसवाड़ों पर चमर ढुल रहे थे, रथ के सारथी के रूप में श्री स्वामीजी बैठे थे, इसके अलावा जुलूस में हाथी, अजमेर-भजन मंडली, बेंडबाजे आदि अनेक ठाटबाट से रथयात्रा में भारी शोभा थी। रथयात्रा तीन घंटे तक शहर में जुलूस के रूप में रही, ऐसी उल्लासकारी रथयात्रा देखकर उदयपुर के नगरजन आश्चर्य अनुभवते थे। बड़ी खुशियाँ मनाते थे, इसप्रकार उदयपुर के मुमुक्षु मंडल ने आनंद और उल्लासपूर्वक गुरुदेव की छत्रछाया में श्री जिनेन्द्र भगवान की प्रतिष्ठा का मंगल महोत्सव मनाया। उन सबको धन्यवाद!

जिनेन्द्र भगवंतों की भावभीगी प्रतिष्ठा करके दूसरे दिन तारीख ०२-०५-६७ सवेरे उदयपुर बांभणवाडा की ओर प्रस्थान किया। बीच में उदयपुर से ४० मील पर श्री ऋषभदेवजी केसरियाजी मंदिर में भगवान के दर्शन किये और पश्चात् जहाँ गुजरात में प्रवेश किया। सरहद सीमा पर बोर्ड में लिखा था कि 'गुजरात आपका स्वागत करता है।'

**बांभणवाड़ा**—जहाँ १००० वर्ष पूर्व श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव पधारे थे, पहुँचते ही गुजरात के भाईयों ने तथा स्थानीय समाज ने स्वामीजी का स्वागत किया, प्रथम चैत्यालय में भगवान श्री पार्श्वनाथ के दर्शन किये, गाँव छोटा होने पर भी यहाँ के श्री चन्दुभाई ने बड़े उत्साहपूर्वक सभी व्यवस्था की थी। गुजरात के सैंकड़ों भाई उपदेश सुनने, दर्शन करने के लिये आये थे। उपरान्त सारा गाँव स्वामीजी के प्रवचन सुनने के लिये आया। भारी हर्ष प्रगट कर रहे थे। स्वामीजी ने भी गुजराती भाषा में प्रसन्नतापूर्वक सुंदर उपदेश दिया। वहाँ से अहमदाबाद पधारे और तारीख ०४-०५-६७ को

**बोटाद ( सौराष्ट्र )**—में स्वामीजी पधारे वहाँ बड़ा भारी स्वागत हुआ। भव्य दो मंजिल का जिनालय है। प्रथम भगवान का दर्शन किये, मंगल प्रवचन हुआ। यहाँ गाँव खास स्वामीजी का माना जाता था। आज यहाँ बड़ी संख्या में दिगम्बर जैन धर्म में दीक्षित हो चुके हैं और इसी गाँव में वैशाख सुदी २ परमोपकारी सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी की ७८ वीं जन्मजयंती मनाई जायेगी। —ब्रह्मचारी हरिभाई तथा गुलाबचंद जैन

[बोटाद से तारीख १२-५-६७ को रवाना होकर उसी दिन स्वामीजी राजकोट पधारेंगे।]

## धर्म प्रभावना के समाचार

**बुलन्दशहर**—तारीख १५-४-६७ पूज्य कानजीस्वामी का ससंघ आगमन हुआ।

सम्मेदशिखरजी तीर्थराज की वंदना कर ४५० करीब साधर्मी बन्धु पधारे, पूज्य स्वामीजी का स्वागत, पंडाल में हजारों की सभा में प्रवचन, देहली, खातौली, सहारनपुर, आदि से भी काफी धर्म जिज्ञासु पधारे थे। बड़ा भारी अपूर्व आनंद मंगल का अवसर पाकर सभी को बड़ा आनन्द हुआ, तत्त्वज्ञान में अपूर्व जिज्ञासा बढ़ी। तारीख २२-४-६७ को महावीर जयन्ती मनायी थी, हमारे विशेष अतिथि श्री पंडित प्रकाशचंदजी शास्त्री 'हितैषी' सम्पादक सन्मति संदेश देहली थे, प्रवचन और श्रोतागण का अपार धर्मप्रेम तथा रथयात्रा आदि सम्मेलन की शोभा देखने योग्य थी। शीतलप्रसाद जैन, मंत्री

## पूज्य कानजीस्वामी का भव्य स्वागत धर्म प्रभावना

**दिल्ली**—तारीख १७ प्रात: ७ बजे से दिल्ली के चारों ओर से धर्म जिज्ञासु समाज टाउनहॉल घंटाघर के निकट गाँधी चौक में एकत्रित होने लगे थे। ठीक ८ बजे स्वामीजी पधारे, जयनादों से स्वागत हुआ। १० मिनिट के पश्चात् स्वामीजी धीरे-धीरे आगे चलने लगे। इस अनोखे विशाल जुलूस में एक नई बात थी, प्रेमपूर्वक सुंदर व्यवस्था की, जिसको देखने से मन में प्रसन्नता और वात्सल्य भावना, मुमुक्षु मंडल के सदस्यों की विशेष आदर्शता प्रतीत होती थी। इस अपूर्व अवसर पर सम्मिलित होनेवाले समाज के अग्रणी और ऊँचे दर्जे के आध्यात्मिक जन समुदाय और धर्म प्रेमी स्त्रियाँ भी सम्मिलित थीं। करोलबागवाले साधर्मी भाई ज्ञानचंदजी कार्य संचालक के मधुर स्वागत गायन ने मन को गद्‌गद् कर दिया और स्त्री-पुरुष एक तान से भक्ति सहित गाते थे। यह जुलूस चाँदनी चौक होता हुआ ९ बजे लालमंदिर के निकट कुन्दकुन्द मंडप में पहुँचा, जयनादों से पंडाल गूँज उठा। पूज्य स्वामीजी के मंच पर विराजते ही ११ कुमारियों ने मंगल गायन से शांति का वातावरण बना दिया। उसके पीछे श्री साहू शांतिप्रसादजी ने देहली नागरिकों की ओर से स्वागत शब्द बोले और अक्षयकुमारजी जैन भी बोले, फिर स्वामीजी ने 'मंगल' शब्द की भव्य व्याख्या पर अपना सुंदर प्रवचन १५ मिनिट तक किया। दोपहर ३ से ४ प्रवचन था। बाहर गाँवों से इस प्रसंग पर स्वामीजी का लाभ लेनेवाले सज्जनों की अच्छी संख्या थी। सबके लिये व्यवस्था रखी थी, तारीख १८-१९ तीन दिन तक स्वामीजी का पवित्र अमृत धारा समान अपूर्व प्रवचन था। उनका लाभ दिन में दो बार मिलता रहा। व्यवस्थापक महोदय श्री कैलाशचन्दजी, मालिक राजा टॉयज कल्पनी तथा श्री नेमीचन्दजी, सुरेन्द्रकुमारजी, श्री ज्ञानचन्दजी, श्री श्रीपालजी, श्री सीतलप्रसादजी, श्री

जयकुमारजी, श्री अजितप्रसादजी, श्री भीमसिंहजी, श्री हेमचन्दजी, श्री प्रेमचन्दजी, श्री सुकुमालजी, श्री श्रीरामजी, श्री पन्नालालजी, श्री शांतिसागर तथा शांतिलाल जैन आदि सबको धन्यवाद। —ब्रह्मचारी गुलाबचन्द जैन

**द्रोणगिरि**—जैन सिद्धक्षेत्र—तारीख २१-४-६७ महावीर जयंती, अध्यात्म सम्मेलन क्षेत्रीय संस्थाओं के अधिवेशन, जिनेन्द्र-रथयात्रा, क्षुल्लकजी चिदानंदजी महाराज, पंडित धन्नालालजी (लशकर) के अध्यात्मिक प्रवचन, पंडित टोडरमलजी द्विशताब्दी समारोह आदि कार्यक्रम रखा गया था, सुंदरलाल शास्त्री। लश्कर, इन्दौर, भोपाल, दिल्ली, बड़ीसादड़ी आदि से भी महावीर जयंती के समाचार आये हैं।

**बड़ी सादड़ी ( राजस्थान )**—तारीख १२-४-६७ यहाँ जैनशिक्षण पाठशाला सुचारु रूप से चलती है। संचालक परम उत्साही कार्यकर्ता श्री सुजानमलजी सा० मोदी हैं, आपने ३१ बालिका तथा कई बच्चों के द्वारा महावीर जयंती महोत्सव पर जो धार्मिक कार्यक्रम विस्तार से लिखकर भेजा है, जो वास्तव में उत्तम धन्यवाद के पात्र हैं; ऐसी उत्तम लगन द्वारा जैनधर्म की शोभा बढ़ानेवाले; जीवंत साधर्मी पैदा करनेवालों को कोटि धन्यवाद।

## आत्मधर्म ग्राहकगण नोट करें

१- नये वर्ष का ३) वार्षिक चंदा जिनका नहीं आवेगा, उन्हें जेष्ठ मास का अंक नं० २ नहीं भेजा जायेगा। क्योंकि वी.पी. नहीं की जाती है, अत: जिन्होंने वार्षिक मूल्य अभी तक न भेजा हो वे तुरंत मनिआर्डर से ३) भेजें।

२- रुपये भेजते वक्त अपना ग्राहक नं० अवश्य लिखें।

३- अपना पता साफ अक्षरों में पूरा अवश्य लिखें। जिससे अंक पहुँचने में भूल न हो।

४- किसी भी प्रकार की शिकायत लिखते वक्त अपना ग्राहक नं० अवश्य लिखें।

मैनेजर आत्मधर्म कार्यालय
पो० सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

नया प्रकाशन

## जयपुर ( खानियां ) तत्त्वचर्चा भाग १-२

बड़े आकार के दो पुस्तक पृष्ठ संख्या ८५०, मूल्य १६-०, पोस्टेजादि अलग, प्रकाशक टोडरमल स्मारक ग्रन्थमाला, ठि० पंडित टोडरमलजी स्मारक भवन, बापूनगर, प्लोट नं० ए-५, जयपुर। आचार्य श्री शिवसागर मुनि महाराज के सामने दो पक्ष के विद्वानों द्वारा जो लिखित चर्चायें हुई थीं, वही इस ग्रंथ में छपवा दी हैं। मध्यस्थ होकर जिज्ञासुगण स्वतंत्रतया निर्णय करें।

# अंधकार और प्रकाश

सूर्य अंधकार को पैदा नहीं करता-मात्र साबित करता है कि वह अपने स्थान पर है, सूर्य प्रकाशरूप है, अंधकाररूप नहीं है। जब ऐसा है, तब उसमें निश्चय से अंधकार का ग्रहण त्याग कैसे ? और व्यवहार से अंधेरा का ग्रहण-त्याग कैसे ? इसप्रकार हरेक (प्रत्येक) द्रव्य के स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव में पर चतुष्टय नहीं है, तब पर का कर्ता हर्ता आदि संबंध निश्चय से या व्यवहार से कैसा माना जाये ? अंधकार हटाना नहीं पड़ता, प्रकाश होते ही उत्पन्न नहीं होता, उसीप्रकार तत्त्वज्ञान द्वारा मिथ्याज्ञान-(अज्ञान अंधेरा) हटता है।

पूर्वपक्ष कहता है कि-प्रथम बंधमार्ग चाहिये, प्रथम राग द्वारा हित (-धर्म) होता है, राग, निमित्त-व्यवहार-संयोग चाहिये; पराश्रय किये बिना कल्याण नहीं होगा; आज किसी को निश्चय-धर्म जरा भी नहीं होता, निश्चय-धर्म तो ८वें या १२वें गुणस्थान से होता है, अत: प्रथम अकेला व्यवहार चाहिये, ऐसा अनादिरूढ़ प्रोढ़ विवेकवाले निश्चय में सर्वथा अनारूढ़ व्यवहार में विमोहित अर्थात् राग की रुचिरूप व्यवहार-(निमित्त) का पक्ष है। किंतु स्वाश्रय, निश्चय-भूतार्थ स्वभाव का सम्यक् प्रकार आश्रय किये बिना (पराश्रय, व्यवहार) निमित्त का पक्ष कभी मिटनेवाला नहीं है। मैं वास्तव में पर का कुछ कर सकता हूँ, वह वासना, संयोग अर्थात् दो द्रव्यों में एकताबुद्धि में से उठती है। जहाँ तक जीव को पराश्रय की रुचि है-संयोगदृष्टि है, परसन्मुखता में प्रेम है, स्वाश्रय अर्थात् स्वसन्मुखता में प्रेम नहीं नहीं है, तब तक पाप से सुख और पुण्य करने से धर्म (हित) होता है, ऐसी मान्यता उसे होती ही है। उसमें ज्ञाता स्वभाव की अरुचि और रागादि में कर्तापन की रुचि होती ही है। और अनादि कालीन मिथ्या प्रतिभासवश राग और संयोग की रुचि द्वारा जो-जो अभिलाषायें तथा धर्म के नाम पर विवाद होते हैं। वह क्लेश; सर्वज्ञ वीतराग कथित नय विभाग को समझने से (मिटाने चाहे तो) मिटा सकते हैं। इसके लिये आचार्यकल्प श्री पंडित टोडरमलजी कृत मोक्षमार्गप्रकाशक अवश्य पढ़नेयोग्य है। (जयपुर (खानियां) तत्त्वचर्चा भी जो जिज्ञासु हो, उसे पढ़नेयोग्य है।)

—ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन

## श्री टोडरमल ग्रंथमाला जयपुर के
# नये प्रकाशन

| | | |
|---|---|---|
| १. | श्री टोडरमल जयन्ती स्मारिका | २) |
| २. | जयपुर (खानियां) तत्त्वचर्चा, भाग १ व २, महत्त्वपूर्ण बड़ा ग्रंथ | १६) |
| ३. | अध्यात्म संदेश (टोडरमलजी कृत रहस्यपूर्ण चिट्ठी पर विस्तृत प्रवचन) | १)५० |
| ४. | मोक्षमार्ग प्रगट करने का उपाय तत्त्व निर्णय | )१५ |
| ५. | शास्त्रों का अर्थ करने की पद्धति | )२० |
| ६. | मोक्षमार्गप्रकाशक | २) |
| ७. | पद्मनंदी पंचविंशतिका में से ऋषभ जिनस्तोत्र सार्थ | ..... |
| ८. | पंडित टोडरमलजी का परिचय | ..... |
| ९. | अमृत वाणी | ..... |

उपरोक्त ग्रंथ जयपुर में दिनांक १३-३-६७ को टोडरमल स्मारक भवन के उद्घाटन अवसर पर प्रकाशित हुए हैं, स्वाध्यायप्रेमी मुमुक्षु बन्धुगण उक्त ग्रंथ मँगाकर ज्ञान यज्ञ में सहयोग देवें।

मंगाने का पता—
**भँवरलाल शाह**
ठि० चित्तरंजन मार्ग, सी. स्कीम, शांतिनिवास
जयपुर (राजस्थान)

---

# मोक्षमार्गप्रकाशक ( आधुनिक हिन्दी भाषा में )

आचार्यकल्प श्री पंडित प्रवर टोडरमलजी कृत यह उत्तम रचना है। मूल स्वहस्त लिखित प्रति द्वारा अक्षरशः अनुवाद कराके, मिलान कराके, बड़े भारी श्रमपूर्वक और अपूर्व उत्साह द्वारा यह प्रकाशन छप चुका है और पंडित जी कृत रहस्यपूर्ण चिट्ठी तथा कविवर पंडित बनारसीदासजी कृत परमार्थ वचनिका; निमित्त-उपादान चिट्ठी यह तीन अधिकार भी मूल प्रतियाँ प्राप्त करके प्रकाशन में लगा दी हैं। प्रथम से ही इनके १०५०० संख्या के ग्राहक हो चुके हें। वे सब साधर्मीजन तीव्र जिज्ञासा सहित भारी तकादा कर रहे हैं, अब उन्हें आर्डर के माफिक प्रतियाँ शीघ्र ही भेजी जा रही हैं। लागत मूल्य ४.५० हुआ है किंतु इसका उत्तम ज्ञान प्रचार हेतु मात्र २) मूल्य रखा गया है। जिन्हें पुस्तक चाहिये वे शीघ्रता से नये आर्डर बुक करा देवें।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

# आत्मधर्म के ग्राहकों से निवेदन

आत्मधर्म मासिक पत्र द्वारा सर्वज्ञ वीतराग कथित दिगम्बर जैनाचार्यों द्वारा जो निर्मल तत्त्वज्ञान प्रगट हो चुके हैं, उनकी परंपरा से ही यह प्रचार होता है। नयी बात नहीं है। स्वाश्रय से ही पवित्र मोक्षमार्ग और उसका फल तथा उससे विपरीतता में बंध मार्ग और उसका फल संसार होता है, इस महान सिद्धांत को समझ ले तो स्वसन्मुखता और सच्चा भेदविज्ञान होता है। आत्मधर्म के ग्राहकों की संख्या २५०० उपरान्त हो चुकी है। आगामी चैत्र मास में वार्षिक शुल्क (चंदा) पूर्ण हो जाता है। और वैशाख मास से नया वर्ष शुरु होता है, उसे याद करके शीघ्रता से मनिआर्डर द्वारा या हरेक गाँव में जितनी संख्या में ग्राहक हों, एक साल के तीन रुपये के हिसाब से एकत्र करके प्रथम से ही रुपया भेज दीजियेगा। वी.पी. करने में व्यर्थ ८५ पैसे खर्च और अनेक कठिनाई रहती है। चंदा भेजते समय आपके चालू ग्राहक नंबर और पता स्पष्ट लिखियेगा। जो भाई बहुत पीछे से चंदा भेजते हैं, और दो मास बाद ग्राहक बनते हैं। उन्हें अंक की कमी पड़ जाने से पूर्व के अंक नहीं भेज सकते हैं। अत: सर्वज्ञ वीतराग कथित पवित्र ज्ञानयज्ञ में सहयोग देकर अपने परिचितों को ग्राहक बनाकर ग्राहक संख्या बढ़ाने की प्रार्थना है। अब की बार आत्मधर्म का वार्षिक चंदा–तीन रुपया वार्षिक रखा है।

## राजकोट में:—

# जैन विद्यार्थियों के लिये शिक्षणवर्ग

ग्रीष्मकालीन छुट्टियों के समय सोनगढ़ में प्रतिवर्ष जैन विद्यार्थियों के लिये शिक्षणवर्ग चलाया जाता है; जिसमें सैकड़ों विद्यार्थी धर्म संस्कारों का लाभ लेते हैं।

इस वर्ष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, वैशाख शुक्ला ३ के दिन राजकोट पधार रहे हैं। इसलिये शिक्षणवर्ग भी गुरुदेव की छत्रछाया में राजकोट में चलेगा। ऐसा धार्मिक शिक्षणवर्ग अपने नगर में चलाये जाने का यह पहला अवसर होने से राजकोट दिगम्बर जैन संघ अति उत्साहित है।

शिक्षणवर्ग तारीख १२–५–६७ शुक्रवार, वैशाख शुक्ला ३ से प्रारम्भ होकर तारीख ३१–५–६७, गुरुवार ज्येष्ठ कृष्णा ८ तक २० दिन चलेगा। राजकोट नगर में चलनेवाले इस शिक्षणवर्ग में लाभ लेने के लिये जैन विद्यार्थी बन्धुओं को हम सादर आमंत्रित करते हैं।

रहने तथा भोजन की व्यवस्था राजकोट दिगम्बर जैन संघ की ओर से की जायेगी। यह शिक्षणवर्ग मात्र जैन पुरुषों के लिये है, बारह साल से कम उम्रवाले बच्चों को न भेजें तथा इस अवसर से लाभ लेने के इच्छुक अपने आने की सूचना प्रथम ही भेज देवें।

तदुपरान्त राजकोट के समवसरण एवं मानस्तंभ की प्रतिष्ठा का वार्षिक उत्सव भी वैशाख शुक्ला ११ के दिन पूज्य गुरुदेव की छत्रछाया में मनाया जायेगा, जिसमें पधारने के लिये आप सबको हमारा हार्दिक आमंत्रण है।

**राजकोट दिगम्बर जैन संघ**

ठि० पंचनाथ प्लोट, राजकोट (सौराष्ट्र)

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

# अवश्य स्वाध्याय करें

| | |
|---|---|
| श्री समयसार शास्त्र | ५–० |
| श्री प्रवचनसार शास्त्र | ४–० |
| श्री नियमसार शास्त्र | ४–० |
| श्री पंचास्तिकाय संग्रह शास्त्र | ३–५० |
| समयसार प्रवचन, भाग १–२–३ | अप्राप्य |
| समयसार प्रवचन भाग ४ | ४–० |
| [कर्ताकर्म अधिकार, पृष्ठ ५६३] | |
| आत्मप्रसिद्धि | ४–० |
| मोक्षशास्त्र बड़ी टीका (तृ०), पृष्ठ–९०० | ५–० |
| स्वयंभू स्तोत्र | ०–५० |
| मुक्ति का मार्ग | ०–५० |
| मोक्षमार्ग–प्रकाशक की किरणें प्र० | १–० |
| '' ''द्वितीय भाग | २–० |
| जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला, भाग १–२–३प्र. | ०–६० |
| योगसार–निमित्त उपादान दोहा, बड़ा टा. | ०–१२ |
| श्री अनुभवप्रकाश (दीपचंद्रजी कृत) | ०–३५ |
| श्री पंचमेरु पूजा संग्रह आदि | १–० |
| बृ.दसलक्षण धर्मव्रत उद्यापन पूजा | ०–७५ |
| देशव्रत उद्योतन प्रवचन | छपेगा |
| अष्टप्रवचन (ज्ञानसमुच्चयसार) | १–५० |
| मोक्षमार्गप्रकाशक (श्री टोडरमलजी कृत) आधुनिक भाषा में | २–० |
| समयसार कलश टीका (पं. राजमल्लजी पांडे कृत) आधुनिक भाषा में | २–७५ |

[डाकव्यय अतिरिक्त]

| | |
|---|---|
| जैन बाल पोथी | ०–२५ |
| छहढाला बड़ा टाईप (मूल) | ०–१५ |
| छहढाला (नई सुबोध टी.ब.) सचित्र | १–० |
| ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव | प्रेस में |
| सम्यग्दर्शन (तीसरी आवृत्ति) | १–८५ |
| जैन तीर्थयात्रा पाठ संग्रह | १–४५ |
| अपूर्व अवसर अमर काव्य पर प्रवचन प्रवचन और श्री कुंदकुंदाचार्य द्वादशानुप्रेक्षा व लघु सामा. | प्रेस में |
| भेदविज्ञानसार | २–० |
| अध्यात्मपाठ संग्रह | ४–० |
| वैराग्य पाठ संग्रह | १–० |
| निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ? | ०–१५ |
| स्तोत्रत्रयी | ०–५० |
| लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका | ०–२५ |
| 'आत्मधर्म मासिक' इस एक वर्ष के लिये | २–० |
| '' पुरानी फाईलें सजिल्द | ३–७५ |
| शासन प्रभाव तथा स्वामीजी की जीवनी | ०–१२ |
| जैनतत्त्व मीमांसा | १–० |
| बृ०मंगल तीर्थयात्रा सचित्र गुजराती में १८) ग्रन्थ का मात्र | ६–० |
| अभिनंदन ग्रंथ | ७–० |

मिलने का पता—
**श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट**
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)


मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।